रचयिता - परिचयकण

जन्मतिथि : ६ अगस्त, १६१५ ई०
माता का नाम : स्व० श्रीमती रामराजी पाण्डेय.
पिता का नाम : स्व० प्रं० गोपालजी पाण्डेय
बालविवाहिता :
स्व० श्रीमती रोशनी पाण्डेय
युवापरिणीता :
स्व० श्रीमती चन्द्रावती पाण्डेय
जन्मस्थान : शाहपुरपट्टी, जिला : भोजपुर (बिहार)

१. स्वाधीनता - संग्राम में : १६३० एवं १६४२ ई०, अन्ततः कारावास, पेन्शन-मरित्याग।

२. व्यवसाय : पत्रकारिता : प्रधान सम्पादक, दैनिक 'नवराष्ट्र' , दैनिक 'विश्वमित्र' , साप्ताहिक 'अग्रदूत' , 'स्वदेश' , 'नवीन बिहार' , 'बिहार-जीवन' , मासिक 'पाटल' एवं 'बालक' ।

३. व्यवसायक्रम में कार्यक्षेत्र : कलकत्ता, काशी, 'कानपुर' , 'पटना' , भागलपुर ।

४. उच्चतम सम्मानोपाधि : 'साहित्यवाचस्पति' , हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन , प्रयाग की उच्चतम सम्मानोपाधि।

५. उच्चतम गैरसरकारी पद : 'अध्यक्ष' ,बिहार-हिन्दी-साहित्य- सम्मेलन तथा बंग प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, वरिष्ठ 'उपाध्यक्ष', हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

६. उच्चतम सरकारी पद : बिहार-सरकार की हिन्दी-समिति के द्वितीय (अन्तिम) अध्यक्ष; प्रथम अध्यक्ष थे डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' । प्रथम पूर्णकालिक अध्यक्ष, बिहार-सरकार की हिन्दी-प्रगति-समिति। प्रथम अध्यक्ष : हिन्दी विधायी उपसमिति ।

७. बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् के प्रति बिहार-सरकार की उपेक्षानीति के विरोध में एकमात्र पदत्यागी निदेशक।

८. प्रकाशित काव्यकृतियाँ : १. 'गणदेवता' (संग्रह), २. 'अशोक' (प्रबन्ध-काव्य), ३. 'शक्तिमयी' (काव्यचयनिका), ४. 'राष्ट्रव्यंजना' (काव्यचयनिका), ५. 'युगान्तर' (महाकाव्य), ६. 'लोकायन' (महाकाव्य), ७. 'युवाज्योति' (युवाशक्ति काव्य, ६ सर्ग), ८. 'नवोदय' (बालक-बालिकाओं के सन्दर्भ में ७ सर्ग), ६. 'मन्वन्तर' (महाकाव्य), १०. 'अग्निपंथी' (महाकाव्य), ११. अमृत (प्रयोगात्मक प्रबन्ध–काव्य) ।

६. प्रकाश्य : १२. 'कर्मोपनिषद्' ; १३. 'पंचतत्त्व' (प्रबन्ध-कविता) १४. 'अभियान' (प्रबन्ध - कविता) , १५. विप्लव (प्रबन्ध - कविता), १६. ' पौरुष ' (प्रबन्ध - कविता), १७. 'शाश्वत' (प्रयोगात्मक प्रबन्ध - काव्य), १८. 'विश्वायतन', १६. 'नारीशतक' आदि।

पता : 'देवगीत' , आशियाना नगर, पटना - ८०० ०२५ (बिहार)

अग्निपंथी

रामदयाल पाण्डेय

'अग्निपंथी'

कुंवरसिंह-अमरसिंह प्रधान महाकाव्य
(१८५७-५८ ई० का स्वतंत्रता-संग्राम संक्षेपतः)

***
**
*

: रचयिता :
—रामदयाल पाण्डेय

***
**
*

: प्रकाशक :
देवगीत प्रकाशन,
'देवगीत', आशियाना नगर, पटना -८०० ०२५
दूरभाष : २८५४२० :

: प्राप्तिस्थान :

१. देवगीत कम्प्यूटर सिस्टम्स प्रा० लि०,
१११ बी०, आशियाना प्लाजा, बुद्धमार्ग,
पटना - ८०० ००१, ☎ २३४७२६

२. देवगीत प्रकाशन,
देवगीत', आशियाना नगर,
पटना-८०० ०२५, ☎ २८५४२०

मूल्य : चालीस रुपये मात्र

द्वितीय संस्करण : १९९५ ई०

: फोटो - कम्पोजिंग :

देवगीत कम्प्यूटर सिस्टम्स प्रा० लि०,
१११ बी०, आशियाना प्लाजा, बुद्धमार्ग,
पटना- ८०० ००१, ☎ २३४७२६

: मुद्रक :

मनीष ऑफसेट
४/५७, राजेन्द्र नगर,
पटना-८०० ०१६, ☎ ६५८१७१

स्मृति-तर्पण

पूज्य पिताश्री स्व० पं० गोपालजी पाण्डेय
का
सभक्ति
–रामदयाल पाण्डेय
द्वारा।

समर्पण

सौ० आत्मजा श्रीमती गीतारानी पाठक

एवं

चि० दौहित्र डॉ० कुमार आलोक पाठक

को

स्नेहाशीषपूर्वक

–रामदयाल पाण्डेय

द्वारा।

उपोद्घात

भूमिका के रूप में दो शब्द लिखने का साहस मुझमें न ज़ाने क्यों और कैसे अपनी प्रथम काव्यकृति ('गणदेवता' नामक संकलन) के प्रकाशन की वेला में ही उदित हुआ था। तब से आज तक मैं इस परम्परा का निर्वाह करता जा रहा हूँ। मेरे चिन्तन तथा लेखन में मानवतावाद एवं आशावाद भी आरम्भ में ही आ गये थे। स्यात् मुझे नैसर्गकि रूप में प्राप्त हुए होंगे। मैंने अपनी 'प्राणगान' शीर्षक रचना में कहा भी तो था : 'मैं निराशा की निशा में अमर आशा का सवेरा।' सर्वथा अकिंचन, अनिकेत और सम्बलहीन व्यक्ति को भी आशावाद का सम्बल तो सुलभ हो ही सकता है, यदि उसके जीवनदर्शन में अनासक्ति विद्यमान हो।

इस अदम्य आशावाद का ही परिणाम है इस काव्यकृति का प्रकाशन। यों अनेक काव्य-कृतियाँ प्रकाशन-प्रतीक्षारत हैं, परन्तु मैंने इस महाकाव्य को ही प्राथमिकता दी है। चूँकि 'मन्वन्तर' महाकाव्य इससे लघुतर था, अतः मैंने उसे मुद्रणार्थ दे दिया था। स्वभावतः उसका प्रकाशन-व्यय अल्पतर था। वह तो प्रकाशित हो ही गया। पाण्डेय रचनावली प्रकाशन में ढाई सौ रु० से अधिक राशि न थी और न है। अतएव 'देवगीत' के स्वत्वाधिकारियों ने मेरी कृतियों का प्रकाशन आवश्यक मानकर देवगीत प्रकाशन संस्थापित किया और इस प्रकाशन के द्वारा 'मन्वन्तर'

(महाकाव्य) प्रकाशित हुआ। इस प्रकाशन के द्वारा ही इस महाकाव्य का भी प्रकाशन हो रहा है और यथासम्भव अन्य कृतियों का भी प्रकाशन होगा। अस्तु।

इस महाकाव्य के लेखन का संक्षिप्ततम इतिहास भी यहाँ अंकित करना अनुपयुक्त न होगा। मेरी ओजस्प्रवृत्ति एवं राष्ट्र के स्वाधीनता - संग्राम में मेरी भागीदारी और आजीवन देशभक्ति के कारण अनेक सुधी साहित्यकारों ने प्रस्ताव किया कि मुझे १८५७-५८ ई० के भारतीय स्वतंत्रता- संग्राम पर एक महाकाव्य अवश्य लिखना चाहिए। मैं भी यह लेखन आवश्यक मानता था, किन्तु प्रकाशन हेतु साधनाभाव था। फिर भी मैंने इसका लेखन किया और उक्त संग्राम में अपने बिहार की भूमिका को तथा अखिल भारतीय स्तर पर भी, महान् देशभक्त बन्धुद्वय वीरवर कुँवर सिंह एवं रणवीर अमर सिंह की प्रधानता के कारण, इस महाकाव्य में बिहार के महामानवद्वय को प्रधानता दी। मैं इन दोनों महापुरुषों के प्रति अपने राष्ट्र की कृतज्ञता आवश्यक मानता हूँ। व्यक्तिगत रूप में तो मैं इनका कृतज्ञ हूँ ही, क्योंकि परोक्षतः मैं अपने ऊपर इनका विशेष प्रभाव मानता हूँ। तभी तो मैंने अपनी स्वतंत्रता-संग्रामसेवा का विकास इनके परम पावन जन्मस्थान जगदीशपुर (तत्कालीन शाहाबाद जिला) से ही करने का संकल्प किया था, जिसे मैंने १६४२ ई० की क्रान्ति में कार्यान्वित भी किया और मुझे देखते ही गोली

मारने के ब्रिटिश आदेश के बावजूद मैं विचलित अथवा प्रतिहत न हुआ। और सम्भवतः इस प्रवृत्ति एवं प्रभाव के कारण ही मैंने स्वाधीनता-संग्रामसेवा-सम्बन्धी पेन्शन का परित्याग किया। जगदीशपुर में ही मैंने यह संकल्प भी किया कि अपनी पत्रकारिता का विकास मैं अमरशहीद गणेशशंकर विद्यार्थी जी के प्रतापी साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' से ही करूँगा और मैंने अपने इस संकल्प को भी कार्यान्वित करने की विरल तुष्टि प्राप्त की। मैं पूज्यवर विद्यार्थी जी के सन्दर्भ में कोई काव्यकृति तो प्रस्तुत नहीं कर सका हूँ, परन्तु मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता एवं श्रद्धांजलि अपनी एक सुदीर्घ रचना में व्यक्त कर पाया हूँ : 'तुम गण बनकर आओ गणेश।' वह रचना पटना के मासिक पत्र 'पारिजात' में प्रकाशित हुई थी। जातीयता और साम्प्रदायिकता के प्रतिकूल अपनी प्रवृत्ति में भी मैं उनके परोक्ष प्रभाव का अवदान मानता हूँ और उनके प्रति आजीवन कृतज्ञ बना रहूँगा। वस्तुतः जातीयता एवं साम्प्रदायिकता की महाव्याधियाँ राष्ट्र के लिए सर्वथा घातक हैं। इन महाव्याधियों के वीरवर कुँवर सिंह तथा रणवीर अमर सिंह भी प्रबलतम विरोधी थे और जातीयता-विरोध एवं साम्प्रदायिक एकता के महान् स्तम्भ थे। इनके शासन एवं सैनिक संगठन में भी इनकी ये सत्प्रवृत्तियाँ प्रचुर परिमाण में थीं। मैं इन दोनों महापुरुषों के जन्म-स्थान जगदीशपुर तथा पूज्यवर विद्यार्थी जी के कर्मक्षेत्र कानपुर नगर को भी

सादर नमन करता हूँ। जिस भाँति महावीर कुँवर सिंह तथा सुवीर अमर सिंह ने १८५७-५८ ई० में अपने जगदीशपुर को अखिल भारतीय स्तर पर स्वाधीनता-संग्राम का प्रमुख केन्द्रस्थल बना दिया था उसी भाँति महान् सेनानी नाना फड़नवीस ने भी अपने कानपुर को ऐतिहासिक विशिष्टता प्रदान की थी। जगदीशपुर तथा कानपुर से मैं बादरायण रूप में नहीं, प्रत्युत घनिष्ठ रूप में भी सम्बद्ध हुआ तो मैंने इसे अपना परम सौभाग्य माना। इस कृति के 'परम्परा' शीर्षक प्रथम सर्ग में मैंने भारतीय देशभक्ति एवं वीरता का उल्लेख संक्षेपतः किया है, क्योंकि पृष्ठसंख्या-सीमा थी। भारत में यह परम्परा नई नहीं है। उन्नीसवीं शती में अवश्य ही १८५७-५८ ई० के स्वतंत्रता-संग्राम में अर्थात् सर्वथा सीमित समय में ही अनेक देशभक्त वीरों तथा वीरांगनाओं ने, अपनी-अपनी अपूर्व देशभक्ति एवं वीरता से, भारत को अनुपम शक्ति प्रदान की। इसे तो विरल सुयोग ही कहा जा सकता है। ब्रिटिश सेना के भारतीय सैनिकों तथा देश के जनगण ने भी अपनी ऐतिहासिक देशभक्ति, शूरता एवं लगन का परिचय दिया। वस्तुतः लगन के बल तथा धुन के धन से ही तो कोई असामान्य कार्य सम्पन्न एवं उद्देश्य प्राप्त हो पाता है। इस कृति में उन्हें सभक्ति प्रणाम अर्पित किये गये हैं। दुःख है कि सभी के नाम सुलभ न हो पाये। और अनेक देशद्रोहियों के नाम सुलभ होने पर भी उनका उल्लेख नहीं किया गया है और जानबूझकर उनकी

अवहेलना की गई है। आखिर देशद्रोही अभिनन्दनीय तो होते नहीं, अपितु सर्वथा उपेक्षणीय ही होते हैं।

१८५७-५८ ई० के भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के विभिन्न संम्पूज्य रणनायकों तथा सम्पूज्य रणनायिकाओं के प्रति मेरे अभिवन्दन-उद्‌गार इस काव्यकृति में अभिव्यक्त हैं। उनके प्रति हमारे राष्ट्र को भी चिरकृतज्ञ रहना ही चाहिए। राष्ट्र के एक तुच्छातितुच्छ व्यक्ति के रूप में मैं स्वयं भी कृतज्ञ हूँ और सदा रहूँगा। उन्नीसवीं सदी के पश्चात् बीसवीं शताब्दी में भी यह क्रान्ति संजीवित रही जिसके नायकों ने हमारे स्वतंत्रता-संग्राम को सशक्त एवं सफल किया। उनमें विशेष प्रभावकारी हुए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस। उनके तथा भारत के समस्त क्रान्तिकारियों के पुनीत स्मृति-चरणों को मैं सभक्ति नमन करता हूँ। इसी प्रकार अहिंसात्मक क्रान्ति के महान् प्रवर्त्तक विश्ववंद्य 'बापू' (महात्मा मोहनदास करमचन्द गाँधी) तथा उनके समस्त पूर्ववर्ती नायकों, सहयोगियों, सेनानियों एवं स्वयंसेवकों को भी मेरे सभक्ति नमन समर्पित हैं। इन दोनों ही पथों के पथिक अग्निपंथी ही तो थे क्योंकि उन्होंने अपरिसीम त्याग-बलिदान की समिधा राष्ट्र के स्वाधीनता-महायज्ञ में समर्पित की।

इन दोनों ही सरणियों से हमारे विशाल तथा महान् राष्ट्र- : स्वाधीनतावादी एवं मानवतावादी राष्ट्र को स्वाधीनता

का सुधावदान सुलभ हुआ है। इस अमृत शक्ति एवं वरदान को शाश्क्त और पूर्णतः अपराजेय बनाना राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का पुनीत कर्त्तव्य है। परम-चरम देशभक्ति तथा अविरत सेवाप्रवृत्ति के कार्यान्वयन से ही इस पावन कर्त्तव्य का पालन सम्भव हो सकता है, अन्यथा नहीं। स्वार्थवाद, भोगवाद अथवा लिप्सावाद से इस कर्त्तव्य का पालन सर्वथा असम्भव है और असम्भव है असंयम तथा असन्तुलन से भी। एतदर्थ भी अग्निपंथी बनना आवश्यक होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् का 'दत्त, दयध्वम् , दमयत,' (लिप्साओं का दमन करो) सन्देश सदा-सर्वदा और सर्वथा भी सार्थक है। सह-अस्तित्व, सामंजस्य और समन्वय हमारे राष्ट्रीय जीवन-दर्शन के शाश्वत आधारभूत तत्त्व हैं। इस कृति का उद्देश्य देशभक्ति- प्रेरणा की प्रस्तुति के साथ ही राष्ट्र के समन्वय-अभियान को भावात्मक प्राणवत्ता प्रदान करना भी है । इसमें तथ्य एवं कल्पना का समन्वय- परिलक्षण भी सुलभ हो सकता है। राष्ट्र की आन्तरिक शान्ति हेतु समन्वयभाव सर्वथा आवश्यक है। हिन्दुओं में यदि देशभक्ति हैं तो मुसलमान भाइयों में भी ऐसा क्यों न हो ? कृति की आधार-साम्रग्री-सुलभता में जगदीशपुर का अवदान स्वाभाविक है। साहित्यिक आधारप्राप्ति हेतु मैं महाराष्ट्र के विद्वान् -स्वतंत्रतासंग्राम-स्तम्भ स्व० वीर सावरकर जी के प्रति विशेष कृतज्ञता

व्यक्त करता हूँ। यह विरल सुयोग है कि प्रबन्ध-काव्य 'अशोक' के लिए भी मुझे मुख्य सामग्री महाराष्ट्र के ही विख्यात इतिहासज्ञ डॉ० भण्डारकर के ग्रन्थ से प्राप्त हुई थी। वीर सावरकरजी ने वृकयुद्ध में वीरवर कुँवर सिंह को छत्रपति शिवाजी से भी आगे बढ़ा हुआ माना है। मैं बिहार के जीवनीकार आदरणीय पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित जी के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, क्योंकि वे वीरवर कुँवर सिंह की जीवनी के पुस्तकाकार-लेखन में अग्रणी थे। समस्त देशभक्त, समाजसेवी तथा राष्ट्रसेवी अग्निपंथी ही होते हैं। आधार-सामग्री-सुलभता हेतु मैं डॉ० रामशोभित सिंह एवं श्री प्रेमकुमार पाठक 'प्रेम' के प्रति अनवरत आभारी रहूँगा।

प्रकाशन-तत्परता हेतु मैं देवगीत कम्प्यूटर कम्पोजिंग तथा देवगीत प्रकाशन के संचालक श्री यतीन्द्र नाथ पाठक का भी आभार सर्वान्तःकरण से मानता हूँ। इसी प्रकार मुद्रण हेतु न्यू साहनी प्रिंटिंग प्रेस के स्वामी श्री राम बालक प्रसाद एवं मनीष ऑफसेट के संचालक श्री रामाशीष प्रसाद का भी आभारी हूँ। तथैव पाण्डुलिपि-प्रस्तुति हेतु मैं श्री व्रजविहारी पाण्डेय का आभार मानता हूँ।

मेरे अन्तर्मन में एक और अभिव्यक्ति अबाध-सी है। वह वीरवर के नामाक्षरों के सम्बन्ध में है। उनके सन्दर्भ में आदरणीय कविवर मनोरंजन जी ने रचना की तो 'कुँअर'

लिखा। तदुपरान्त मैंने भी स्फुट कविता लिखी तो 'कुँअर' ही स्वाभाविक लगा। कविवर सिद्धेश्वरी सहाय 'सिद्धेश' ने अपनी 'स्वरसाधना' नामक काव्यचयनिका १६८५ ई० में प्रकाशित की तो 'लाल होली' एवं 'जगदीशपुर गढ़' शीर्षक रचनाओं में कुँअर रूप ही प्रस्तुत किया। यही उच्चारणानुमोदित भी है। किन्तु इधर जब 'कुँवर' लिखा जाने लगा तो मैंने भी इसे सामंजस्य हेतु ग्रहण कर लिया।

सन्तोष है कि प्रलयवृष्टि के वर्जक एवं बाधक वातावरण में भी मैं वीरवर-द्वय की प्रतिमाओं को प्रणाम करने हेतु पटना से जगदीशपुर जा सका था। पाण्डुलिपि-काव्यकृतियों १.'अमृत' (प्रबन्ध-काव्य) २. 'कर्मोपिनिषद् ' (प्रबन्ध-कविता), ३. पंचतत्त्व' (प्रबन्ध-कविता) ४. 'विप्लव' (प्रबन्ध-कविता) आदि का प्रकाशनापेक्षी-

रविवार,	**–रामदयाल पाण्डेय,**
विजय-दशमी,	'देवगीत',
२०५० वि०	आशियाना नगर,
दिनांक २४ अक्तूबर, १६६३ ई०	पटना -८०० ०२५

सर्गानुक्रम

'अग्निपंथी'

पटना (बिहार) की फँसियारी गली (गुलजारबाग) में ब्रिटिश नृशंसता की पराकाष्ठा

पटना नगर के जनाब पीर अली के अतिरिक्त तिरहुत के जमींदार वारिस अली साहब , पटना शहर के श्री कल्लू खलीफा , श्री घसीटा मिरासी , श्री रघुनन्दन कहार आदि को रचयिता के नमन पुनः पुनः समर्पित हैं। इन्हें अंग्रेजों ने पटना के गुलजारबाग मुहल्ले के मथनी टीले पर नीम के एक ऊँचे पेड़ की डाली से लटका कर फाँसी दे दी कि चील - कौए इनकी लाशों को नोच - नोच कर खायें और नगर के लोग देखें तो आतंक में पड़ें जिससे वे भी अंग्रेजी राज के विरोध का साहस न करें । इस घटना के कारण उस स्थान की गली का नाम नागरिकों ने फँसियारी गली रख दिया । इन वीरों का प्रयास गुलजारबाग में स्थित अंग्रेजों की अफीम कोठी पर अधिकार करने का था । इनकी शहादत चिरस्मरणीय तथा देशभक्ति - प्रेरिका रहेगी ।

प्रथम सर्ग

परम्परा

कवि देशभक्ति की परम्परा
को प्रति पल करता स्मरण - नमन;
वीरत्व और बलिदानों से
करता सदैव प्रेरणा - ग्रहण ।

शुचि मौर्यवंश - अवतंस प्रथम
आये थे चन्द्रगुप्त नरवर;
चाणक्य - शिष्य , विजयी , सुवीर;
करने स्वतंत्रता - संरक्षण ।

भारत हो सकता नहीं दमित-
पददलित विदेशी शासक से;
कर सकता है रण विजयपूर्ण
घातक - पापी आक्रामक से।

यूनानी दीर सिकन्दर का
बल - अहंकार पददलित किया ;
सेल्यूकस था योद्धा विशिष्ट ;
उसने कन्या का दान दिया।

अक्षुण्ण - अखण्ड रहा भारत,
हो गया मगध का शौर्य जयी ;
चिर देशभक्ति - वीरतापूर्ण
भारत - जन बन सकते प्रलयी।

वे नहीं किसी भारत - रिपु को
भारत - शासक बनने देंगे ;
प्रण हुआ जयी भारत - जन का ;
आक्रान्ता - रूप नहीं लेंगे।

वे बने रहेंगे देशभक्त ,
दिग्विजयी योद्धा , बलिदानी ;
कर सकते देशद्रोह नहीं,
चिर देश - प्रगति के अभियानी।

निर्भय , उत्सर्गपूर्ण रहकर ,
सकते कर विजित शैल - अम्बर ;
बाधक हो सकते कभी नहीं
रवि -शशि, घन, प्रलयानल, सागर।

अरि के हित व्रज्रादपि कठोर,
सुहृदों के लिए कुसुम - कोमल;
हो सकते नहीं पराजित ये ;
सकते हैं जीत अखिल भूतल।

यदि कभी पराजय मिल जाये
तो त्वरित विजय लेंमे लड़कर ;
साहस हारेंगे कभी नहीं ;
हो सकते कभी नहीं कायर।

दुर्योग पराजय देगा तो
मन नहीं पराजय मानेगा ;
सम्पूर्ण शक्ति - साहस लेकर
वह रिपुदल से बदला लेगा।

बदला लेना है यही कि है
अरि को पदमर्दित कर देना ;
पूर्णतः पराजित कर, उसकी ,
आक्रमण - शक्ति को हर लेना।

विषधर के विषमय दन्त तोड़,
उसको विषहीन बनाना है ;
व्याघ्रों - सिंहों के पंजों को
कर भग्न , स्ववश में लाना है ।

यह परम्परा है भारत की,
सिंहों से शिशु खेला करते;
उनके साहस - बल छीन त्वरित,
उनमें अनाक्रमण भर देते ।

जब - जब अरातिदल आये हैं
लेकर भारत - जय - अभिलाषा ,
तब - तब स्वदेशभक्तों ने कर
दी दूर अखिल आशा - भाषा ।

रिपु हुए पराजित बुरी तरह ;
छक्के छूटे , मुँह की खाई ;
खट्टे हो गये दाँत उनके ;
मिल गई धूल में अंगड़ाई ।

थे पृथ्वीराज प्रवीर - धीर
भारत के अनुपम देशभक्त ;
गजनी आक्रामक से लड़कर ,
दे गये शौर्यमय हैं निज स्वर ।

भारत क्या होगा स्वत्वहीन ?
कापुरुष बनेगा क्या कदापि ?
निज मस्तक - प्राण पड़ें देने ,
भारत - जन करते रण तथापि ।

थे शेरशाह भी विरल वीर;
वे देशभक्त भी थे अखण्ड;
जो मुगल - भूमि से आये थे
उनके थे वे वैरी प्रचण्ड।

भारत पर भारत - जन का ही
शासन हो, यह अभिलाषा थी;
उनका था शौर्य शेर जैसा;
अरिगर्वमर्दिनी भाषा थी।

आग्नेय सर्वदा रण - पौरुष
है भारत - जन का मतवाला;
ज्वाला देती रणचण्डी की
ग्रीवा में मुण्डों की माला।

इस भाँति लड़े राणा प्रताप
बलवान विदेशी शासन से;
निज सन्तति मरी क्षुधित रहकर,
पर हटे नहीं अपने प्रण से।

तलवार हाथ में लिये और
करतल पर निज मस्तक लेकर,
लड़ते - लड़ते मर मिटे, किन्तु
अरि के सम्मुख न झुके तिल भर।

गोविन्द सिंह गुरु इसी भाँति;
थे वीर शिवाजी भी ऐसे;
थी चाह कि भारत हो स्वतंत्र,
हो सकता हो चाहे जैसे।

यह परम्परा तो है सुदीर्घ,
ऐसे वीर, किन्तु, थे अति विशिष्ट
हो गये सुयोद्धा देशभक्त;
अस्तित्व झेलते महाक्लिष्ट।

ये सभी बृहत् इतिहास - पुरुष
थे देशभक्त अतिशय महान्;
वीरात्मा, बलिदानी योद्धा;
भर गये देश में शक्ति - प्राण।

थे शेरशाह भी विरल वीर;
वे देशभक्त भी थे अखण्ड;
जो मुगल - भूमि से आये थे
उनके थे वे वैरी प्रचण्ड।

भारत पर भारत - जन का ही
शासन हो, यह अभिलाषा थी;
उनका था शौर्य शेर जैसा;
अरिगर्वमर्दिनी भाषा थी।

आग्नेय सर्वदा रण - पौरुष
है भारत - जन का मतवाला;
ज्वाला देती रणचण्डी की
ग्रीवा में मुण्डों की माला।

इस भाँति लड़े राणा प्रताप
बलवान विदेशी शासन से;
निज सन्तति मरी क्षुधित रहकर,
पर हटे नहीं अपने प्रण से।

तलवार हाथ में लिये और
करतल पर निज मस्तक लेकर,
लड़ते - लड़ते मर मिटे, किन्तु
अरि के सम्मुख न झुके तिल भर।

गोविन्द सिंह गुरु इसी भाँति;
थे वीर शिवाजी भी ऐसे;
थी चाह कि भारत हो स्वतंत्र,
हो सकता हो चाहे जैसे।

यह परम्परा तो है सुदीर्घ,
छह वीर, किन्तु, थे अति विशिष्ट
हो गये सुयोद्धा देशभक्त;
अस्तित्व झेलते महाक्लिष्ट।

ये सभी बृहत् इतिहास - पुरुष
थे देशभक्त अतिशय महान्;
वीरात्मा, बलिदानी योद्धा;
भर गये देश में शक्ति - प्राण।

इस परम्परा में ही आये
जब रही शताब्दी अष्टादश ;
दो बन्धु वीरवर कुँवर सिंह ,
औ' अमर सिंह देने सरबस ।

एकोनविंश में युद्ध किया
दोनों ने देशभक्ति - पथ पर ;
भारत - स्वतंत्रता लाने को
कर गये कठिनतम जयी समर ।

थी राजनीति ही नहीं वहाँ ;
संस्कृति - भाषा - रक्षा भी थी ;
यह ध्येय सर्वदा है पावन ;
है देशभक्ति की शुचि वीथी ।

अपनी संस्कृति , अपनी भाषा
हैं सदा - सर्वदा सर्वोत्तम;
संस्कृति - भाषा विदेशिनी हैं
अपने हित में , है भीषण भ्रम ।

अपनी धरती है स्वर्गोपरि ,
अक्षुण्ण रहे इसका कण - कण ,
अपना ही शासन रहे सदा ;
कर्त्तव्य - निरत चिर हो जन - जन।

ऐसे ही चिर सर्वोत्तम हैं
साहित्य - कलाएँ भारतीय ;
इनमें ही भारत की आत्मा -
अस्मिता निहित , परिचय स्वकीय।

सामान्य मनुज भी तो अगणित
थे देशभक्ति में रहे पगे ;
रणकौशल उनमें भले न हो ;
पर शौर्य - भाव थे सदा जगे ।

नारियाँ भी नहीं रहीं विरत ,
दौड़ीं कर में तलवार लिये ;
शत - शत शहीद भी हुईं और
शत - शत ने निज सौभाग्य दिये ।

भारत महान् है इसीलिए ;
यों हैं महान् वन - पर्वत भी ;
कण - कण महानता - पूरित है ;
भारत है चिर आभारत भी ।

भारत की महिमा - गरिमा को
अक्षुण्ण रखेंगे हम शाश्वत ;
अगणित जन प्रण लेकर आये ;
यों महादेशवत् है भारत ।

प्रिय भारत के शिशु और वृद्ध
भी क्या पीछे रहने वाले ?
वे कभी नहीं हैं रहे मूक,
ज्यों हों मुख पर जकड़े ताले ।

स्वातंत्र्य - कामना रही सदा ;
सबके सब इसके रहे मुखर ;
जब - जब आई दासता यहाँ ;
चेष्टा है रही, मिटे सत्वर ।

दासत्व घोर अभिशाप , ग्लानि-,
लज्जा , क्या इसे सहन करना ?
श्रेयस्कर मनुजोचित है यह ,
चिर मुक्ति हेतु लड़ना - मरना ।

विप्लव की ज्वाला बुझी हुई
सर्वदा देश में रही कहाँ ?
इतिहास बताता है कि रहे
चलते स्वतंत्रता - युद्ध यहाँ ।

प्रत्येक शताब्दी में भारत
है मुक्ति - समर - सन्नद्ध हुआ ;
दासत्व - श्रृंखला में अविरत
क्या रह सकता यह बद्ध हुआ?

विभ्राट रहे आते अनेक ,
पौरुष भारत का रहा सजग ;
रणवाद्य - विषाण बजे क्रमशः ;
दुंदुभि-स्वर-भीत हुआ अग - जग।

भारत लगता मृदु - मधु, परन्तु,
विकराल रूप ले सकता है;
यह नहीं शत्रु को क़भी एक
कण भी अपना दे सकता है।

दे सकता है शोणित अपार
यह स्वतंत्रता - समरांगण में;
यों देता सब को स्नेह अमित;
क्या रखता घृणा - द्वेष मन में?

यों तो जीवन भी रण होता;
करना पड़ता है उसे सतत;
बच्चों को भी तो शिक्षा का
रण करना पड़ता है अविरत।

हाँ, अविरत चेष्टा से ही तो
जीवन मनुष्य का बन पाता;
है दुःख सहन करना पड़ता,
रखना पड़ता उससे नाता।

क्या सुविधा और असुविधा क्या?
झेलनी असुविधाएँ पड़तीं;
कोमलतम लतिकाएँ भी तो
प्रतिकूल परिस्थिति से लड़तीं।

कृषिकर्म और श्रम भी तो हैं
रण होते चिर बाधाओं से;
इस भाँति मनुज योद्धा बनता;
रहता अजेय विपदाओं से।

भारत - जन हैं होते विशेष
चिर स्वतंत्रता के अभिलाषी;
करते स्वतंत्रता - युद्ध सफल;
ये हैं इस रण के अभ्यासी।

यों कभी विफल भी होते हैं;
ऐसा होना स्वाभाविक है;
असफलता मुक्ति-समर में क्या?
यह तो नैतिक - चारित्रिक है।

अन्ततः विजय होती ही है
यदि नहीं युद्ध यह नर छोड़े;
आती पराजयें हों जितनी;
पर कभी न रण से मुख मोड़े।

क्या है यदि सौ वर्षों तक भी
जन - स्वतंत्रता का युद्ध चले?
अन्ततः विजय होती ही है,
चाहे वह जितनी बार छले।

था अमरीका भी लड़ा न क्या
सौ वर्ष मुक्ति निज पाने को?
लड़ते ही रहे मनुज उसके,
चाहे न मिला कुछ खाने को।

भारत - जन तो होते विशेष
उत्साही और समर्पणमय;
ये कर सकते हैं युद्ध सदा;
सम्मुख हो चाहे महाप्रलय।

[illegible] -युद्ध ही जीवन है;
लज्जामय है दासत्व - सहन,
यह तो है घृणित, महाकलुषित,
श्रेयस्कर होता युद्धमरण।

यह जीवन - दर्शन भारत का
है सर्वोत्तम, चिर श्लाघनीय;
लांछित होते हैं दास राष्ट्र;
योद्धा होते अभिनन्दनीय।

है देशभक्ति -बल ही देता
मानव को नैतिक -आत्मिक बल;
जो अजेयता से मण्डित है;
होता अन्ततः नहीं निष्फल।

अन्ततः सफलता - भूषित हो
देता स्वतंत्रता मानव को;
कोई भौतिक सुख पा सकता
क्या इस उज्ज्वलतम गौरव को?

भौतिक सुख है उच्चतम नहीं;
उच्चतम मुक्ति का रण होता,
इसमें उत्सर्ग धन्य करता;
कापुरुष -कृपण मानव रोता।

थे विरल वीरवर देशभक्त
दोनों बलिदानी कुँवर -अमर;
सिंहद्वय सिंहों से बढ़कर;
कवि करता इन्हें नमन सादर।

इनके युग को भी नमन सदा;
है पुर जगदीश नमस्य नाम,
था शाहाबाद नमस्य जिला;
थे वंद्य मगध के नगर - ग्राम।

है वन्दनीय भारत सारा;
अविरल महान् , शाश्वत पावन,
पूज्या है यह शुचि परम्परा;
भारत को कवि का सतत नमन।

द्वितीय सर्ग

उद्भव : विकास

लघु है नगर जगदीशपुर;
है किन्तु महिमा से भरा,
[illegible] महिमापूर्ण दो
थे देशभक्त सुवीरवर।

जो बन गया लघु भोजपुर,
वह था कभी व्यापक जिला;
वह जिला शाहाबाद था;
थे शेरशाह जयी जहाँ।।

वह नगर सासाराम था,
जो बना पूरा शेर था
जब शाह रहते थे वहाँ,
जो विरल निर्माता बने।

चौसा समीप जयी बने,
सम्राट् मुगल विजित हुआ;
भागा हुमायूँ दुम दबा;
बक्सर जिला लघु है बना।

है रोहतास जिला बना
लघु ही बना आकार में;
पर शेरशाह - नगर हुआ
विख्यात कुल संसार में।

कुल पाँच ही तो वर्ष थे,
पर शेरशाह अमर हुए;
थे वीरवर, शासक विरल;
वे देशभक्त महान् थे।

कवि वाणभट्ट हुए जहाँ,
संस्कृत - महाकवि रूप में;
'कादम्बरी' विख्यात कृति
है, अमरता से पूरिता।

उस पुण्यभूमि में उदित हुए
दो देशभक्त वीरवर परम,
वह पुर जगदीश सुधन्य हुआ;
था शाहाबाद जिला अनुपम।

थे धन्य सिंह साहबजादा,
उदवन्त सिंह के जो आत्मज;
उनके आत्मज दो कुँवर -अमर
बन गये महाजन -सर-पंकज।

दो वीरवन्धुओं के भ्राता
दो और, हुए वे अल्प ज्ञात;
थे दलभंजन - रिपुदमन नाम;
वे कर न सके विख्याति प्राप्त।

दो वीर बन्धुओं में अनुपम
वीरता - सहित थी देशभक्ति;
यह कवि यथार्थ ही लिखता है;
कर नहीं रहा कोई प्रशस्ति।

यों तो भारत का कण - कण है
चिर देशभक्तिमय, वीर, अभय,
जब उन्नीसवीं सदी में थी
पाई बिहार ने विरल विजय।

अट्ठारह सौ अट्ठावन के
स्वातंत्र्य - युद्ध के क्या कहने?
शाहाबादी सड़कों पर अरि
की शोणित - धार लगी बहने।

यों तो यह भूमि वनमयी थी,
विस्तृत अरण्य थे अतिव्यापक,
'आरा' बन गया अरण्यों से;
मानव - वनराज बन्धु सम्यक्।

वनराज नहीं होते असंख्य;
दो बन्धु हुए सर्वथा विरल;
भारत के अश्रु - सरोवर में
ये उदित हुए बन रक्त - कमल।

अरुणोत्पल भी अभिहित होते;
यों तो थे वज्रादपि कठोर;
शैशव में ही थी प्रकट हुई
इनकी सुवीरता अति अथोर।

यों ही कवि नहीं लिख रहा है,
दे सकता है इसका प्रमाण;
हाँ, उदाहरण से ही सदैव
सम्पुष्ट हुआ है मनुज - ज्ञान।

थे कुँवर सिंह ज्यों बाल भानु ;
था अतुलनीय इनका बचपन ;
वीरत्व विरल, रण की प्रवृत्ति
से शैशव ने पाया यौवन ।

असि के प्रयोग में अद्वितीय
प्रतिभा इनकी हो गई प्रकट ;
तलवार हाथ में जब लेते,
कोई आता था नहीं निकट ।

थे पिता नहीं कोई भूपति ;
केवल थे अच्छे जमींदार ;
कुछ गाँवों में ही था सीमित
उनकी जागीरों का प्रसार।

उन दिनों मौलवी ही प्राय :
थे जमींदार रखते शिक्षक ;
था सम्प्रदाय का ध्यान नहीं ;
सौहार्द सभी से था व्यापक ।

हिन्दू - मुसलिम सद्भावपूर्ण
ही जीवन - यापन करते थे ;
बाँटते परस्पर सुख - दुख थे ;
मिलकर सुख से मन भरते थे ।

बाहर से ही ज्यों खरबूजा
रेखाओं से रहता खण्डित,
भीतर से एक - अखण्ड सदा,
इस भाँति हृदय थे अविभाजित ।

जो बाल कुँवर के शिक्षक थे
मौलवी, प्यार निज देते थे ;
प्रोत्साहित करते पुत्र सदृश,
कुछ नहीं लुब्ध हो लेते थे ।

ज्यों एक हो गये घर दोनों,
ऐसा प्रगाढ़ अपनापन था :
हाँ, इसी प्रेम में सूत्रबद्ध
उन्मुक्त कुँवर का बचपन था ।

अनुशासन रखते थे विशेष ;
अनुशासन ही तो जीवन है ;
मुक्तता सबल करने वाला
ही अनुशासन का बन्धन है ।

यों ही तो एक दिवस असि ले
चल पड़े सुवीर कुँवर बालक,
हल्का प्रयोग हो अवयव पर ;
था वार नहीं करना घातक ।

उस्ताद मौलवी मिले तुरत ;
असि के प्रयोग का अवसर दें ;
शागिर्द भला क्या कुछ कहता ?
तो कहा पिता ने - 'कुछ कर दें । '

'रखने दें उँगली पर असि को,
निकलेगा रक्त अल्पतम ही
अवसर यह शुभ हो व्यर्थ नहीं
यह तो है प्रारंभिक क्रम ही।

यों बिस्मिल्लाह हुआ हल्का;
यह श्रीगणेश ही था लघुतम;
लघु से ही तो होते विशाल;
क्रमशः बढ़ता जाता है क्रम।

होना ही था लघु बालक को
तरुणाई में योद्धा महान् ;
अस्सी वर्षों तक रहे तरुण;
कितना अनुपम यह कीर्तिमान।

बालारुण - प्रतिभा - रश्मिपुंज
विस्तीर्ण हुआ जन - अम्बर में;
जैसे बिखेरते दल अपने
हैं उत्पलपुंज सरोवर में।

प्रत्यक्ष हो गया, यह बालक
होगा इतिहास - रचयिता नव;
यह प्राप्त करेगा वसुन्धरा
में विरल ख्यातिमय यश - गौरव।

जब उदित गगन में रवि होता,
सोई वसुधा जग जाती है;
चह - चह करने लगते विहंग
तो विहंगिनी गुण गाती है।,

नीड़ों में जो रहते विहंग
भरते उड़ान वे अम्बर में,
उड्डयन - प्रेरणा से जन को
उत्प्रेरित करते पलभर में।

कल्पना उड्डयन की मानव
प्रत्येक क्षेत्र में मूर्त्त करे;
चाहिए विश्व को जो गौरव
उसको क्रमशः सम्पूर्त करे।

विज्ञान - प्रगति, साहित्य - सृष्टि,
निज शिल्प - क्लाएं दे भव को;
प्रतिभा को करे पूर्ण सक्रिय,
कर सके सुलभ नर - गौरव को।

मानव मुमूर्षु क्यों बने कभी ?
हो भले मर्त्य नर कहलाता;
क्यों नहीं मनीषा को मुकुलित
कर सुरभि - स्वच्छता ला पाता ?

बन सकता विश्व मुकुरवत् है;
दिख सकते हैं सम्पूर्ण सुपथ;
जा सकता है अविरत बढ़ता
कुल मानवतामय पौरुष - रथ।

हाँ, पौरुष वीर कुँवर का भी
लगता, होगा मानवतामय;
यह बालक होगा मनुज - रत्न,
था तनिक नहीं इसमें संशय।

थीं बालविवाह - प्रथा व्यापक;
क्या कुँवर कुँआरे बच पाते ?
सुख्याति देवमूँगा तक भी
फैली तो राजा थे आते।

तो शुभ मुहूर्त्त का पता किया;
प्रस्ताव किया आकर सत्वर;
अन्ततः कुँवर के पिता हुए
सहमत, राजा ने पाया वर।

कन्या उनकी थी रूपवती,
गुणवती; राज - कुल था आदृत;
वाग्देवी - कमला का सुयोग था;
राजा का था व्याप्त सुकृत।

तो हुए विवाहित कुँवर बाल;
उल्लेखनीय थी धूमधाम;
अनुभवी नारियाँ कहती थीं,
वरकन्या हैं अतिशय ललाम।

बालक ही तो थे वीर कुँवर;
प्रत्यक्ष किन्तु प्रतिभा - बल था;
था अश्व - हस्तियों का मेला,
शोभित व्यापक जनमण्डल था।

थी विरल साज - सज्जा प्रस्तुत;
संगीत - वाद्य - ध्वनि थी गुंजित;
गृह में ही कला - प्रेम के थे
मधुवीज हुए अगणित रोपित।

गुंजित था अखिल वायुमण्डल,
मधुमय सुनृत्य - झंकारों से;
ज्यों सरस्वती - कल्पना हुई
साकार बीन के तारों से।

उसमें रुचि नहीं कुँवर की थी
जो था महार्घ उपहार मिला;
ये शौर्यभाव के प्रेमी थे;
उर - सर में था मधुपद्म खिला।

ये श्वेत अश्व के थे प्रेमी;
रंगों के प्रति रुचि नहीं रही;
थे ये प्रेमी गतिमयता के;
अग्रजवत् देते मार्ग सही।

थे अमर सिंह शुचि भ्रातृभक्त;
थे अग्रज के आज्ञापालक;
दोनों थे मातापिता - भक्त;
थी चाह कि हों जन के नायक।

दाम्पत्य - सूत्र में बँधे कुँवर,
क्रमशः आया दायित्व - भाव;
थीं पत्नी भी अनुकूल मिलीं;
था नहीं कदापि हुआ दुराव।

तन ही दो थे, मन एक सदा.
वे सदा परस्पर पूरक थे;
था पारस्परिक प्रेम अनुपम;
आदर्शों के संरक्षक थे।

आईं पत्नी उनके गृह में
जैसे लेकर अभिनब प्रकाश,
सुरभित आचार - विचारों से
वे भी देती थीं नवोल्लास।

कालान्तर में हो गया पुत्र
भी प्राप्त, सुखी परिवार हुआ;
[illegible] तो था 'एकश्चन्द्र' सदृश,
निर्गत नवीन संसार हुआ।

हो गईं अकाल कालकवलित पत्नी,
तो कुँवर हुए विगलित,
पर इनमें जो था कर्मयोग,
वह नहीं हुआ खण्डित - बाधित।

[illegible] गये दिवंगत पिता और
आ गया कुँवर पर अमित भार;
पर अनुज अमर ने यथाशक्ति
कुछ भार लिया, कुल दुख बिसार।

जन कहते उनको राम - लखन,
थे अमर कुँवर के अनुगामी;
अनुचर ही निज को मान चले;
अग्रज को माना निज स्वामी।

यह भ्रातृभक्ति आदर्श बनी;
सबको प्रेरित करनेवाली;
दोनों भ्राता थे सहयोगी;
आ सकी नहीं अन्तर - व्याली।

दोनों ने मिलकर सेना भी
अपनी कर ली क्रमशः विकसित;
हो गये पिता मृत तो कोई
रिपु कर न सके इनको पीड़ित।

अंग्रेज देश के रिपु ही हैं;
वे अपने देश चले जाये;
हम हटा विदेशी शासन को,
अपने अधिकार अखिल पायें।

चाहे जो हो या जितना हो,
सब बाँट - बूँट कर खायेंगे;
अपना सब कुछ होगा तो हम
सब अधिकाधिक उपजायेंगे।

तृतीय सर्ग

काल खण्ड

कैसा विषम वह काल था!
निज देश अवनतभाल था।
शासक विदेशी थे यहाँ;
शासन महाविष - व्याल था!

आये - फिरंगी जाल ले;
व्यापार के हित माल ले;
पर लूटते थे देश को;
शोषण महाविकराल ले।

थे क्रूर और अमानुषिक ;
वे कर लगाते थे अधिक ;
जनता बनी थी मूकवत् ,
करती विरोध नहीं तनिक।

अंग्रेज देते प्राण - भय ,
थे क्रूर हत्यारे अदय ;
थे प्राण का करते हरण ,
वे व्याप्त करते थे प्रलय ।

पर थे कुँवर विद्रोहमय;
ये वीर योद्धा थे अभय,
थे देशभक्त महान् ये;
रखने लगे थे बल अजय।

अंग्रेज लेते प्राण थे;
वे नर नहीं, हैवान थे;
तन श्वेत था, काला हृदय;
प्रत्यक्ष ज्यों शैतान थे।

[illegible] व्यथित लघु भ्राता अमर;
[illegible] चाहते करना समर;
[illegible] बहुत कुछ सोचते;
[illegible] बुद्धि रखते अति प्रखर।

अनुकूल अवसर चाहिए;
उड्डयन को पर चाहिए
साधन अपेक्षित हैं अमित;
सेना सुतत्पर चाहिए।

[illegible] न होता रण सफल,
[illegible] अस्त्र पूरे और बल;
[illegible] के लिए तो चाहिए
[illegible] बृहत् , रण में कुशल।

कुल देश भी तैयार हो;
सर्वत्र ही ललकार हो;
हों देशभक्त सभी मनुज;
अरि पर प्रबलतम वार हो।

परिवेश हो एकत्वमय;
हो नर नहीं कोई सभय;
व्यापक रहें तैयारियाँ;
यों ही नहीं मिलती विजय।

थे कुशल चिन्तक भी कुँवर;
रखते मिलाकर निखिल नर;
थीं नारियाँ भी पूजती;
था दुर्गवत् सारा नगर।

रखते निरन्तर जागरण;
थे सर्वदैव प्रसन्न जन;
पर कुँवर पूरा सोचकर
ही पन्थ पर रखते चरण।

शासक अनय करने लगे
वे कोष निज भरने लग
आक्रोशमय थे वीर ज
रिपु राष्ट्र - धन हरने लगे

★ ★ ★

कुँवर नहीं भयभीत कभी;
करते थे अन्याय सहन?
सम्पर्क बढ़ाते जाते थे;
बढ़ते जाते नेतृत्व - चरण।

कर पत्राचार - मंत्रणाएँ,
ये वातावरण बनाते थे;
जो नहीं समझते प्रमुख व्यक्ति,
ये स्वयं उन्हें समझाते थे।

उनका था कोई स्वार्थ नहीं,
सर्वस्व - त्याग कर सकते थे;
निज शोणित और साधनों से
राष्ट्रकलश भर सकते थे।

साधन तो थे अतिशय सीमित;
पर देशभक्ति रखते अपार,
आश्चर्यजनक थी कर्मशक्ति;
ले सकते थे ये बृहत् भार।

कलकत्ता और कानपुर से
इनका सम्पर्क बना व्यापक;
इस महाक्षेत्र के जनगण के
क्रमशः बन गये कुशल नायक।

इस महाकाव्य का नायक भी
कवि ने यों ही न बना डाला;
जानता कि इस उन्नायक में
जलती थी देशभक्ति - ज्वाला।

आक्रोश जागता था, परन्तु
उपयुक्त नहीं था वह अवसर;
चाहिए प्रतीक्षा भी करनी;
चाहिए धैर्य का भी सागर।

थे धीर और गंभीर कुँवर,
साधन थे किन्तु अल्प अतिशय;
सब सोच - समझ कर चलना था;
जिससे मिल सके शत्रु पर जय।

विस्तृत था भीषणतम तमिस्र;
था व्याप्त चतुर्दिक् महाध्वान्त;
क्षणदा थी बनी महाक्षणदा;
ज्यों हुआ असम्भव हो निशान्त।

आशा - तारक भी दृश्य न थे;
व्यापक था भारत का शोषण;
होगा स्वतंत्रता - रवि न उदित;
तो क्या संम्भव होगा जीवन?

निराश्य घोरतम लगता था;
पर कुँवर निराश नहीं होते;
जानते 'निराशा' शब्द नहीं,
निज साहस - धैर्य नहीं खोते।

सोते भी थे ये कहाँ कभी!
सर्वदा सुजागृति - रत रहते;
संकट आमंत्रित करते थे;
पीड़ा असह्य भी थे सहते।

ध्वान्तचर भले हों भीषणतम,
भयभीत न तिलभर होते थे;
विपदाओं पर हँसते रहते;
ये नहीं किसी पल रोते थे।

घनघोर निराशा में भी ये
आशा का दीप जलाते थे;
अवसर प्रतिकूल रहे जितना,
उसको अनुकूल बनाते थे।

अवसर अनुकूल ढूंढ़ते थे,
पर बने नहीं अवसरवादी;
सिद्धान्तों पर थे अडिग सदा,
हो जितनी अपनी बर्बादी।

क्षति कुछ पल ही चिन्तित करती;
सिद्धान्त - हानि है भीषणतम;
अपमान - ग्लानि - दायिनी सदा;
वर्द्धित करती नर का विभ्रम।

सर्वस्व लूटने भारत का
आ गया विदेशी शासन था;
संस्कृति, शिक्षा, भाषा पर भी
उसका अति प्रबल आक्रमण था।

अस्मिता नष्ट हो भारत की,
भारत - जन उनके दास रहें;
उनकी 'हाँ' में 'हाँ' किया करें;
चाहे वे दिन को रात कहें।

अपनी भाषा को हीन समझ,
उनकी ही भाषा अपनायें;
उनसे ही लें शिक्षा - दीक्षा;
उनके जयगान सदा गायें।

कर दें अपने उद्योग नष्ट;
ये माल विदेशी ही चाहें;
उनके कठपुतले बन जायें;
आघात सहें, न भरें आहें।

भारत जन रहें विभक्त सदा,
यह दुरभिसन्धि थी शासन की;
क्या कभी विदेशी शासन में
है सम्भावना सुजीवन की?

चिर सम्प्रदाय कुल टकरायें;
जातियाँ परस्पर युद्ध करें;
बढ़ता ही जाये क्षेत्रवाद,
यों ही भारत - जन लड़े - मरें।

सामन्तवाद बढ़ता जाये,
जो दुर्ग विदेशी शासन का;
मानसिक दासता दे शिक्षा;
हो अन्त मुक्ति के चिन्तन का।

पुरुषार्थ अखिल हो ध्वस्त - पस्त;
हो देश न कभी आत्मनिर्भर;
मिट जायें कला - शिल्प सारे;
भारत हो प्रतिभा हित बंजर।

रस सूखे सारे जीवन का,
बस, मृगमरीचिकावत् जल हो;
रस हो तो मात्र करुण रस हो;
भारत सर्वथा मरुस्थल हो।

थे बने वधस्थल यत्र - तत्र;
लगता था देश वधस्थल - सा;
आनन्द कहाँ? उल्लास कहाँ?
था व्याप्त रुदन - कोलाहल - सा।

उन्मुक्त पवन हो कहीं नहीं;
जन करें कष्ट से श्वास - ग्रहण;
चिर दम घुटता ही रहे और
हो महामरण का आयोजन।

अपनी भाषा - संस्कृति न रहें
तो भला मुक्ति का पवन कहाँ?
यदि लदा विदेशी शासन हो,
जीवन - यौवनमय भवन कहाँ?

देखे स्वतंत्रता - स्वप्न नहीं;
जीवन इसका निःस्वाद बने;
इसकी मौलिकता हो विनष्ट;
यह मात्र तुच्छ अनुवाद बने।

चाहते विदेशी शासक थे,
भारत ऐसा ही बन जाये;
हो शक्ति - रहित, निष्प्राण और
यह तेजहीन जीवन पाये।

हो ओजस्विता नहीं तिलभर;
वर्चस्व सर्वथा हो समाप्त,
भावेच्छाएँ हों मृत इसकी;
कर सके नहीं निज स्वत्व प्राप्त।

मृत हो जिजीविषा, कर्मशक्ति,
हों शिल्पी सारे भुजाहीन;
कर छिन्न भुजाएँ कितनों की
कर दिया उन्हें अति विवश, दीन।

ढाका का मलमल बना स्वप्न;
रह गये विदेशी वस्त्र सुलभ;
प्रिय कोहनूर भी चला गया,
जो था अन्यत्र परम दुर्लभ।

इंग्लैण्ड मूल्य जो कहता था,
वह तो देना ही पड़ता था।
लेना पड़ता था माल, भले
वह गोदामों में सड़ता था।

क्रयशक्ति नहीं थी, जनता तो
भारत की हुई अबल - निर्धन;
सर्वत्र व्याप्त मूर्च्छा - सी थी ;
क्रमशः आता था राष्ट्र - मरण।

चिन्तित रहते थे वीर कुँवर,
कुछ तो अवश्य करना होगा;
चाहे पायेंगे स्वतन्त्रता,
अथवा लड़कर मरना होगा।

यह गर्हित जीवन क्या जीना?
मृत होना ही श्रेयस्कर है;
पर मरना ही है तो स्वदेश
के हित लड़ना क्या दुष्कर है?

कामना वीर यह करते हैं,
हो प्राप्त विजय या युद्ध - मरण;
जो देशभक्त होते अदम्य
वे कार्यान्वित करते निज प्रण।

जीवन रहता है संस्कृति में;
संस्कृति स्वतंत्रता में रहती,
जैसे उत्तुंग हिमालय से
भारत की गंगा हैं बहती।

यदि परवशता हो, संस्कृति क्या?
संस्कृति न रहे तो क्या जीवन?
वृद्धावस्था में भी सम्भव
है इनका संरक्षक यौवन।

चतुर्थ सर्ग

जागरण

सर्वत्र भारतवर्ष में नवजागरण आने लगा;
होगा स्वतंत्र अवश्य है, यह भाव जन - मन में जगा।
जो सुप्त हों जन, यत्न से उनको जगाना चाहिए;
दारिद्र्यकारी दासता - यम को भगाना चाहिए।

गृहयुद्ध क्यों होगा यहाँ? क्यों जन परस्पर ही लड़ें?
यदि युद्ध हो तो शत्रु से, निज सर भले देने पड़ें।
भारत सदैव स्वतंत्रता का चाहता आधार है;
इस हेतु जन - जन का हृदय रहता यहाँ तैयार है।

सब एक - से होते नहीं, पर संग हो सकते सभी;
सबको मिलाना चाहिए, मिल - बैठ समझायें कभी।
इसमें कहाँ सन्देह है? यह कुँवर का सुविचार था;
इनमें सभी के संगठन का यह सफल आधार था।

बैठे नहीं रहते कभी, ये भ्रमण कर मिलने लगे;
इनकी सुचेष्टा से सभी के मन - सुमन खिलने लगे।
कहते सभी, अपने कुँवर जी धन्य हैं, मतिमान हैं,
सबको मिलाने में कुशल हैं, प्रेम - धैर्य - निधान हैं।

ये पूर्णतः जगदीशपुर का भार देकर अमर को,
कारुष निखिल में व्याप्त करते चेतना की लहर को।
बढ़ते चले जाते लिये सन्देश निज अतरौलिया,
सम्पूर्ण आजमगढ़ जिले ने पूर्ण आश्वासन दिया।

बलिया कि गाजीपुर रहे, अथवा रहे वाराणसी;
सब गृह सदृश लगते इन्हें, जनता हृदय में थी बसी।
जो बीज दे आये कुँवर, जनता उसे बोने लगी;
संचेतना, क्रमशः सफल हो, अंकुरित होने लगी।

ताहिए ही धैर्य - साहस ; अभयतामय आत्मबल,
न हो संकल्प में तो ध्येय क्या होगा सफल?
गुण सभी थे कुँवर में, थे अमर भी पीछे नहीं;
जहाँ रखते उन्हें, थे अमर डट जाते वहीं।

ातावरण में शान्ति थी ; थी भीतरी ज्वाला जगी;
पर कहीं दिखती नहीं, कुछ आग थी ऐसी लगी।
शान्त ज्यों होता पवन तूफान लाने के लिए;
शान्ति ऐसी थी प्रखर ज्वाला जगाने के लिए।

ारम्भ करने के लिए दृढ़ता बढ़ानी चाहिए;
जानते थे कुँवर, पूरी शक्ति लानी चाहिए।
समें कहाँ सन्देह है, ये पूर्णतः गम्भीर थे?
समय को पहचानते, केवल नहीं रणवीर थे।

ातिधीर थे, शस्त्रास्त्र का करते अचूक प्रयोग थे;
टे - बड़े सारे जनों का चाहते सहयोग थे।
हयोग ले कुल जातियों की शक्ति ये पाने लगे;
, मुसलिमों को भी सबल विश्वास में लाने लगे।

मुसलिम जनों को, ब्राह्मणों को कर चुके विश्वस्त थे,
उनको प्रशिक्षित पूर्णतः कर, हो चुके आश्वस्त थे।
इस भांति पिछड़ों - हरिजनों को भी बढ़ाने लग गये;
निष्ठासहित प्रतिदिन वहाँ आने लगे सैनिक नये।

कुछ ब्रिटिश सेना से निकलकर भी वहाँ आने लगे;
वे भारतीय सुसैनिकों के कष्ट बतलाने लगे।
थे भेद भी जो जानते, उसको बताते पूर्णतः;
अन्याय जो करते ब्रिटिश, कहते उसे सर्वांशतः।

यह देखते थे कुँवर, बढ़ता जा रहा यह मेल है;
थे समझते यह भी, समर होता न कोई खेल है।
जो बढ़ रहा है जागरण, वह और बढ़ना चाहिए;
रण का नशा प्रत्येक में कुछ और चढ़ना चाहिए।

जो संगठन है सुलभ, उसको चिर बढ़ाना चाहिए।
रण - कुशलता का लक्ष्य भी कुछ और पाना - चाहिए।
आरम्भ करना सहज है, पर सफल करना है कठिन;
हो क्रान्ति कैसी? किस तरह? चिन्ता यही थी रातदिन।

ये ध्यान रखते, रुक न जायें कर्म जनकल्याण के;
नित निखिल साधन भी बढ़ें स्वातंत्र्य के अभियान के।
जन - एकता की क्षति न हो, वह सतत आगे ही बढ़े;
सामन्त वर्ग भले नहीं, जनता सदा ऊपर चढ़े।

सामन्त को तो बाँधता सम्पति का व्यामोह है;
जो धन - प्रलोभी है मनुज, करता नहीं विद्रोह है।
वह चाहता है, दास ही रहना पड़े, पर धन मिले;
शासन विदेशी भी रहे, पर धन - सुमन अपना खिले।

पर दासता से प्राप्त धन होता भयंकर नाग है;
दासत्व सहता जो, उसे क्या राष्ट्र से अनुराग है?
वह चाहता है, दासता के संग धन बढ़ता रहे;
है आज तो धन - सुख मिला, इतिहास चाहे जो कहे।

इतिहास की चिन्ता नहीं, चिन्ता नहीं जन - क्लेश की;
वह बेच सकता अस्मिता भी अखिल अपने देश की।
धनलोलुपों से देश का गौरव कभी बचता नहीं;
नर - जन्तु, वैभव - दनुज ये रहते जहाँ धन है वहीं।

जो स्वाभिमानी हैं नहीं, उनमें कहाँ है चेतना?
रखते नहीं निज देश के प्रति गर्व की कुछ भावना।
वे तो मरे ही हैं, नहीं जब प्राणवत्ता रंच भी;
जो बिक चुके हैं स्वयं वे रखते प्रतिष्ठा क्या कभी?

यदि है प्रतिष्ठा ही नहीं, यदि आत्मगौरव है नहीं,
तो वह मनुज क्या है मनुज? क्या हृदय रखता कुछ कहीं?
वह तुष्ट रहता वित्त से, अट्टालिका की शान से;
रहता उलूकों के सदृश, सम्बन्ध क्या दिनमान से?

वह जानता क्या है कि होता ज्ञान का दिनमान भी?
रहता सदा अज्ञान में, रखता नहीं निज मान भी।
ऐसे मनुज से देश का जीवन बचाना चाहिए;
उसकी उपेक्षा - भर्त्सना कर, भूल जाना चाहिए।

वह राष्ट्रमानव है नहीं, है जन्तुशव, चिर भार है;
उसका भरोसा क्या कभी? उसको सदा धिक्कार है।
यह सोचते थे कुँवर, कुल सामान्य जन तैयार हों।
कुछ समय रखना धैर्य है, तैयार कुल आधार हों।

वे जानते थे, है त्वरा घातक बड़े अभियान में;
यह शाप तो होगा कभी परिणत सुखद वरदान में।
इनको कहाँ कब चैन था? रचते सतत परियोजना;
अति दूर तक जाकर जगाते देशभक्ति - सुचेतना।

वे चाहते थे, राष्ट्र का प्रत्येक जन रणधीर हो;
वह प्रण करे स्वातंत्र्य का, चिर वास्तविक प्रणवीर हो।
अनुमान से, परिकल्पना से भी बड़ा अभियान हो;
नक्षत्र - शशि हरते निशा क्या? सुलभ गुरु दिनमान हो।

जन - जन बने नरव्याघ्र, नरशार्दूल, उन्नतभाल हो;
कोई नहीं हो कापुरुष, कोई न मनुज - श्रृगाल हो।
है मानवों में ज्ञान - रवि; क्यों धनपिशाच - उलूक हो?
हो देशभक्ति अपार, इसमें रंच भी क्यों चूक हो?

ह्रा पुण्य - भारत भूमि का गौरव बचाना चाहिए;
यदि हो सके तो दें बढ़ा, क्या कुछ घटाना चाहिए?
पूर्ण विश्व की जो शक्ति है, उससे बृहत्तर शक्ति हो;
पाराक्ति क्यों हों अन्य पर? निज देश के प्रति भक्ति हो।

कितना बड़ा यह ध्येय है, इसको समझना चाहिए;
जड़ - क्षुद्र स्वार्थों में नहीं जन को उलझना चाहिए।
चिर ध्येय पर ही दृष्टि हो, अन्यत्र जा भटके नहीं;
निर्दिष्ट पथ पर ही बढ़े, विचलित न हो, अँटके नहीं।

रिपु हैं विदेशी, किन्तु हम तो हैं जमे निज देश में;
मिलकर भगा सकते, भले पड़ना पड़े अति क्लेश में।
जो क्लेश है स्थायी, त्वरित उसको हटाना चाहिए;
दासत्व है अतिशय दुखद, उसको भगाना चाहिए।

हैं उखड़ सकते पाँव उनके, हैं नहीं अंगदचरण;
जो हैं विदेशी अरि, सतत हैं कुटिल उनके आचरण।
उनकी कुटिलता समझकर ही पग बढ़ाने हैं हमें।
जो बल बिखर - से हैं गये, वे भी जुटाने हैं हमें।

कितना बड़ा यह कार्य है, क्या एक दिन की बात है?
हैं रश्मियाँ आती अमित तो अन्त पाती रात है।
यदि किरण रवि की एक ही हो, सफल क्या होगी भला?
अगणित जनों को है सिखानी इस महारण की कला।

संगीत - प्रेम

इस विषम परिस्थिति में इनका
चिन्तित रहना स्वाभाविक था;
पर शान्ति - शक्ति देता इनको
संगीत - प्रेम नैगर्सिक था।

थे कुँवर नृत्य के भी प्रेमी,
संगीत - नृत्य हैं युग्म सदा;
इनमें होती है शक्ति कि दें
कर दूर त्वरित चिन्ता - विपदा।

साहित्य - काव्य भी इसी भाँति
नर की चिन्ताएँ हरते हैं;
धीमानों को सुख देते हैं;
आमोद हृदय में भरते हैं।

संगीत - नृत्य को देते हैं
ये भाव - छन्द की धाराएँ;
करते रहते हैं भग्न सतत
चिन्ता - विषादकृत काराएँ।

था शाहाबाद जिले का जो
आरा नगरस्थित मुख्यालय,
था वहीं आम्रपाली जैसी
धर्मन का मधु - संगीतालय।

जड़ परम्परा - अनुसार वहाँ
धर्मन बाई कहलाती थी;
जो कलामर्म के ज्ञाता थे,
उनका मन वह बहलाती थी।

थे ख्यात कुँवर वीरत्व हेतु,
संगीत हेतु वह ख्याता थी;
थी कुँवर सिंह की प्रशंसिका
रखती इनसे वह नाता थी।

कापुरुषों की क्या प्रशंसिका
होती है पावन उच्च कला?
शूरों, सत्कर्म - पन्थियों के
प्रति ही रखती है रुचि विमला।

इसमें क्या है सन्देह? कुँवर
थे धर्मवीर, शुचि कर्मवीर;
सद्‌गुण - सौरभ - सम्पन्न सदा,
रखते चरित्र पावन - गभीर

सत्पुरुष कुँवर थे देशभक्त,
तो धर्मन भी सन्नारी थी;
थे वीर कुँवर उसको प्रिय तो
वह भी इनको चिर प्यारी थी।

सामान्य कर्म है नहीं, कुँवर
ने जो मस्जिद थी बनवाई,
रख दिया नाम उसका धर्मन;
मस्जिद ने ख्याति अमित पाई।

थे सम्प्रदाय - निरपेक्ष कुँवर;
मस्जिद - मन्दिर बनवाते थे;
निर्माण कराते, किन्तु नहीं
इनमें विभेद कुछ लाते थे।

जो राष्ट्र - एकता के प्रेमी
होते, रखते हैं भेद नहीं ;
कोई हिन्दू या मुस्लिम हो,
करते हैं कोई खेद नहीं ।

भारत उदारता - निहित सदा,
क्या होगा संकीर्णता - निहित ?
भारत के उच्चादर्शों की
महिमा है युग - युग विश्वविदित।

इस महादर्श के संरक्षक
थे वीर कुँवर नरवर महान् ;
इनके समन्वयी चिन्तन में
थे निहित सदा गीता - कुरान ।

चिन्तन - जीवन में भेद न था ;
दोनों का पूर्ण समन्वय था ;
इनका व्यक्तित्व मनुजता के
आदर्शों का शुचि आलय था ।

[illegible] अमित सुगन्धित सुमन सदृश ;
[illegible] रवि समान आलोकित थे ;
[illegible]ल्पना विहग - उड्डयन सदृश,
[illegible]ो भाव मनुजता - मुकुलित थे ।

इसमें क्या है सन्देह, सद्गुणों
के धन से लोकप्रिय थे ?
धन तो इनका था मध्यम, पर
निज देश हेतु अति सक्रिय थे ।

[illegible]पने उदात्त चिन्तन को थे
[illegible]रते पूर्णतः सुकार्यान्वित ;
[illegible]ादर्श चिन्तकों के थे ये,
[illegible]ते गरिमा - महिमामण्डित ।

मानवता का सौरभ समस्त
सारे मनुजों को देते थे ;
इसलिए सभी इनके दर्शन
से अमित प्रेरणा लेते थे ।

कहते सब, वीर कुँवर नरवर
हैं लगते ज्यों अवतारी हों ;
चिर विघ्न - कालिये के फण पर
वंशीवादक वनवारी हों ।

प्रत्येक शती में क्या ऐसे
हैं महापुरुष जग में आते ?
सामान्य रहे परिवार भले,
इतिहास - पुरुष वे बन जाते ।

चिर काव्य - प्रेम, संगीत - प्रेम
करते थे इनका हृदय सबल ;
कर्दम - समाज में आये थे
जैसे बनकर मानव - शतदल ।

ये धीरोदात्त सुनायक थे ;
करता उत्प्रेरित सदा स्मरण ;
इनकी स्मरणीया देशभक्ति
देगी भारत को चिर जीवन।

गे संगठन करने लगे थे अनवरत ;
इस भाँति होने लग गया कुछ - कुछ बृहत् ।
भभुआ - अधौरा तक हुआ विस्तार था ;
तो रोहिताश्व नगर सुदृढ़ आधार था।

जो है तिलौथू ग्राम, वह भी सम्मिलित;
आगे बढ़ाते ही गये आधार नित।
चिर कर्मनाशा, शोण औ' दुर्गावती,
सर्वत्र करते संगठन सुमहाव्रती।

सबसे बड़ा आधार गंगातट हुआ ;
वह क्षेत्र शाहाबाद का उद्‌भट हुआ ।
संघर्ष - जीवन के सभी अभ्यस्त थे ;
अति घोर प्लावन - युद्ध में जन व्यस्त थे ।

जो अन्न मोटे हैं वही आहार थे ;
चिर दुग्ध-घृत में निहित पौष्टिक सार थे ।
था पँहुचना दुष्कर, वहाँ पथ थे नहीं ;
पर देश को सैनिक अधिक मिलते वहीं ।

उस पार बलिया और आजमगढ़ प्रबल ;
था पास गाजीपुर, नहीं कुछ कम सबल ।
इतिहास भी कहता कि वह बलवीर था ;
थे कुँवर उसके प्राण, वह सु - शरीर था ।

था जागरण का पांचजन्य वहाँ बजा ;
स्वाधीनता की प्राप्ति का सपना सजा ।
'जब समय आयेगा, चलेगा रण तभी'
थे कुँवर कहते, मान जाते थे सभी ।

★ ★ ★

पंचम सर्ग

विस्फोट

कलकत्ता के बैरकपुर में
ज्यों अकस्मात् ज्वाला भड़की ;
छावनी सैनिकों की जो थी,
उस पर जैसे विजली कड़की ।

कड़की ही नहीं, किन्तु जैसे
हो गई कहर ढानेवाली ;
वह ब्रिटिश शासकों पर टूटी
बनकर घातिका महाव्याली ।

यूँ तो प्रायः वर्षावधि तक
थी सुलग रही ज्वाला भीतर ;
वह नहीं ठीक से सुलग सकी ,
आ गई अचानक ही बाहर ।

हो सकता है , अंग्रेजों ने
ही अपनी चाल दिखाई हो ;
पूर्णतः सुलगने के पहले
ही वह ज्वाला भड़काई हो ।

उनको भय था कि समय पर यदि
भारत में विप्लव भड़केगा ,
तो नहीं दबेगा किसी भाँति ;
सत्ता का महल जला देगा ।

यों दिया कारतूसों को जो
थे चरबी से ही कसे गये ;
थी चरबी गाय और शूकर
की , कारतूस थे नये - नये ।

[illegible] थीं पलटनें वहाँ स्थापित
चौंतीस और उन्नीस कथित ;
[illegible] चौंतीसवीं अधिक उखड़ी ;
भीतर - भीतर थी बहुत व्यथित ।

छावनियों के बाहर - बाहर
थे जमे क्रान्तिकारी नक्की ,
जो नक्की अली कहाते थे ,
उनमें थी देशभक्ति पक्की ।

[illegible] चौंतीसवीं बहुत बिगड़ी ,
ऐसा अंग्रेजों ने माना ;
[illegible] उन्नीसवीं शान्त थोड़ी ,
था यही उन्होंने पहचाना ।

इसलिए उसी के हाथों में
ये करतूस पहले आये ;
फिर उसके सभी जवानों को
समझाने को बाहर लाये ।

यह धमकी भी दी गई कि सैनिक
बात नहीं यदि मानेंगे,
तो भग्न पलटनें होंगी ही;
फिर कैसे वे जी पायेंगे?

जीने - मरने की क्या चिन्ता?
सब के सब थे ज्यों महाव्रती;
कोई भी विचलित नहीं हुआ;
थे सभी बने दृढ़ क्रान्तिपथी।

थे शेष सभी दीवाने - से;
अपने पथ पर थे अटल - अचल;
वे देशभक्ति के पन्थी थे,
हो दमन भले जितना अविरल।

तो हुए फिरंगी अधिक क्षुब्ध;
आतंक प्रबलतम वे लाये;
पर देशभक्त सैनिक अविचल
क्या रंच मात्र भी घबड़ाये?

बलिया अंचल का एक वीर
मंगल पाण्डेय बढ़ा आगे;
बोला कि साथियो! रुको नहीं;
कोई न हटे, न कहीं भागे।

एकता हमारी है अटूट;
होती यह सबसे बड़ी शक्ति;
दुम दबा फिरंगी भागेंगे;
यदि रहे सबलतम देशभक्ति।

इन शब्दों से ह्यूसन मेजर
सार्जेण्ट हुआ अति उत्तेजित;
बोला कि पकड़ लो मंगल को;
वह एकाकी होगा दण्डित।

पर नहीं किसी ने सुनी बात;
बोले, हम सभी वीर मंगल
पाण्डेय बनेंगे, यह सुन लो;
हम सभी लड़ेंगे दल के दल।

हम हिन्दू हों या हों मुसलिम,
हम सब हैं भारत की सन्तति;
हम देख नहीं सकते आँखे
मूँदे भारत की यह दुर्गति।'

मंगल पाण्डेय बढ़ा आगे,
हयूसन को झट गोली मारी;
वह वहीं हो गया मृत पूरा;
हेकड़ी गई उसकी सारी।

तब लेफ्टीनेण्ट बाह्ब ने बढ़
कर चाहा उसे पकड़ लेना;
पर मंगल नहीं जानता था
रिपु को कोई अवसर देना।

थी चली दूसरी गोली तो
वह अधिकारी आहत होकर,
केवल भुलुण्ठित हुआ और
फिर बैठ गया तत्क्षण उठकर।

पिस्तौल तान ली निज उसने,
मंगल ने दी तलवार चला;
तलवार फिरंगी ने भी ली,
पर उसमें उतनी नहीं कला।

मंगल का वार अचूक रहा,
वह अधिकारी भी मृत होकर
गिर पड़ा वहीं, गोरा तृतीय
था बढ़ा कि दागे मंगल पर।

[illegible] गोली नहीं दाग पाया,
[illegible]राके मस्तक पर हुआ वार;
[illegible], भारतीय सैनिक ने ही
[illegible]न्दे से कर डाला प्रहार।

कुल भारतीय सैनिक बोले-
'मंगल प्रिय बन्धु हमारा है;
हम नहीं पकड़ने दे सकते,
खौलती रक्त की धारा है।'

कर्नल ह्वीलर हो गया त्रस्त,
वह तो झट गया पलायन कर;
पर कर्नल ही अर्सी आया
गोरों की गुरु सेना लेकर।

समझा मंगल ने अब संभव
है नहीं बचाना निज तन को;
है स्पर्श अपावन ब्रिटिशों का;
मैं स्वयं मिटा दूँ जीवन को।

अपने वक्षस्थल पर उसने
अपने कर से दागी गोली;
बोला; साथियो! शत्रुदल के
शोणित से तुम खेलो होली।

इसमें कोई सन्देह नहीं,
निज देश मुक्ति पायेगा ही;
यदि आज नहीं तो कल अवश्य
स्वातंत्र्य - सूर्य आयेगा ही।

वह आहत और विमूर्च्छित था;
हाँ, तभी शत्रुदल सका पकड़;
ले गया उसे रुग्णालय में;
की पूछताछ फिर जी भर कर।

चाहा कि बताये उनको जो
सैनिक थे विप्लव के पथ पर;
लेकिन दृढ़ था मंगल तब भी;
वह नहीं पाप यह सकता कर।

क्या देशभक्त का है चरित्र
भेदिया देश का बन जाना?
वह तो है भीषण गद्दारी;
केवल कलंक ही है पाना।

अट्ठारह सौ सत्तावन की
उनतीस मार्च को युद्ध छिड़ा;
अप्रैल आठ को फाँसी पर
चढ़कर सुवीर का वपुस् गिरा।

तन ही तो मरा वीरवर का
उस स्वतंत्रता - अभियानी का,
है अमर नाम, चिर दीप्तिमान,
उस देशभक्ति - अभिमानी का।

परिवार महासामान्य, किन्तु
वह देशभक्त है अजर - अमर;
वह बीज बो गया स्वतंत्रता-
रण का जो, बना सफल तरुवर।

प्रेरणा भर गया है अपार;
वह समर नहीं हो सका सफल;
पर निस्सन्देह कीर्ति उसकी
सर्वदा रहेगी अमल - धवल।

माना कि समय अनुकूल न था,
थी और प्रतीक्षा आवश्यक;
देशाभिमान - रक्षा के हित
होता है समय सदा सम्यक्।

था अग्निपंथी वीर वह;
निज देश के प्रति भक्तिमय;
वह शूल - पथ पर चल सके,
क्यों हो सुमन - पंथी सभय?

निज स्वार्थ ही क्या चाहिए?
सर्वोच्च तो है देश - हित;
संकीर्ण अथवा कृपण क्यों
हो? मनुज हो समुदार नित।

यदि हो समाज अभाव में,
तो व्यक्ति - वैभव क्या उचित?
औदार्य से वह दे सके
निज वित्त, जन क्यों हों व्यथित?

नर व्यथित को सुख दे सके,
जन की व्यथा हरता रहे;
सुख चाहिए ही बाँटना;
चिर दुःख क्यों कोई सहे?

श्रम से सदा निज देश का
धनबल बढ़ाना चाहिए ;
बन अग्निपंथी , मनुज को
कर्दम हटाना चाहिए ।

परिणाम की चिन्ता न हो ;
कर्त्तव्यपंथी हो मनुज ,
तो स्वस्थ - सबल स्वदेश हो ;
होगा नहीं दौर्बल्य - रुज ।

माने अतिथि को देवता ,
माता - पिता - गुरु को सदा ;
हो कर्मयोगी , ज्ञानमय ;
है देशभक्ति विजय - प्रदा ।

★ ★ ★

षष्ठ सर्ग

विस्तार

है अग्निपंथ विस्तार - पूर्ण ;
देता है ऊर्जा और प्रगति ;
मंगल पाण्डेय अग्निपंथी
ने मरकर दी प्रेरणा - सुमति ।

सामान्य नहीं होता स्वेच्छा
से करना असमय मृत्यु - वरण ;
हो राष्ट्र और जनता के हित
तो भरता नवजीवन - यौवन ।

मंगल का सहकर्मी जो था
वह सूबेदार चला पथ पर,
तो उसको भी फाँसी दे दी;
वह भी मरकर हो गया अमर।

दोनों पलटनें भंग कर दीं
अंग्रेजों ने क्रोधित होकर;
सैनिक भारत के देशभक्त
हो आह्लादित निकले बाहर।

लौटा ब्रिटिशों की बन्दूकें,
वे करने गंगास्नान चले;
टोपियाँ खरीदी थीं अपनी;
उनको भी वे कर दान चले।

था दान यही, उनको फाड़ा;
वे थीं परवशता की प्रतीक;
अंग्रेज क्रोध से लाल हुए,
पर कर न सके कुछ भी सटीक।

अम्बाला तक फैली ज्वाला;
सैनिक अधिकारी हुए विकल;
भारत के पुत्र सैनिकों से
उनके आवास उठे तब जल।

जलकर होते थे भस्म, किन्तु
कुछ पता नहीं चल पाता था;
क्या कर सकते अंग्रेज विवश?
बेबस मन भी जल जाता था।

सेनापति प्रमुख एन्सन था,
उसने चाहा कुछ भेद मिले;
पर देशभक्त सैनिक दृढ़ थे;
वे नहीं तनिक भी डुले - हिले।

मैथम था लेफ्टीनेण्ट, शिविर
में घुसे सुसैनिक भारतीय;
डरकर उसने ली माँग क्षमा;
सैनिक दयार्द्र थे अद्वितीय।

लारेन्स हेनरी सर जो था,
वह था सर्वोपरि अधिकारी;
उसने पलटन को भंग किया;
समझा कि दण्ड है यह भारी।

विद्रोही विचलित नहीं हुए;
आ गये कानपुर से नाना,
थे फड़नवीस रखते उपाधि;
सबने उनको नेता माना।

मेरठ में था कुछ भिन्न रूप;
छह मई हुई अतिशय भीषण;
सैनिक न स्पर्श कर सके तनिक,
जो कारतूस आये नूतन।

नब्बे में से पाँच ही भीरु
सैनिक कुछ - कुछ तैयार हुए;
पचासी तो विद्रोही बन,
जैसे दाहक अंगार हुए।

सेनापति इससे हुआ क्रुद्ध;
नौ मई बनी नूतन कारण;
जौ पचासी विद्रोही थे,
दे दिया दण्ड उनको भीषण।

सैनिक न्यायालय के समक्ष
वे पचासी सैनिक आये;
यह दण्ड हुआ, दस वर्षों तक
कारा उनका गृह बन जाये।

दे हथकड़ियाँ - बेड़ियाँ उन्हें
कारा में डाला गया तुरत;
अन्यान्य सैनिकों ने तत्क्षण
ले लिया मुक्ति का पावन व्रत।

महिलाएँ भी हो गई क्षुब्ध,
जब हाल उन्होंने यह पाया;
जो सैनिक रहे विरत, उनको
कसकर धिक्कारा, उकसाया।

इकतीस मई को करें क्रान्ति,
यह कार्यक्रम निर्धारित था;
पर अब अपमान असह्य हुआ;
सारा भारत अपमानित था।

'अब और प्रतीक्षा क्या करनी?
दस मई आ गई, क्या है कम?
सहकर्मी हैं बन्दीगृह में;
लज्जा में डूब गये हैं हम।'

परिवेश हो गया ज्वालामय;
आये लुहार कुछ ग्रामों से;
कारा तो तोड़ी गई तुरत;
बेड़ियाँ कटीं हंगामों से।

अंग्रेजों के आवास जले,
क्या बचा कमिश्नर का बँगला?
ग्रीदेड कमिश्नर का कोई
उस ज्वाला में वश नहीं चला।

सामूहिक हत्याकाड हेतु
विद्रोही कुछ इतने मचले,
बोलते 'फिरंगी को मारो',
थे गिर्जाघर की ओर चले।

ग्यारहवीं पलटन का कर्नल
था फिनिस, चला वह समझाने;
पर क्या कुछ सुनने वाले थे
वे स्वतंत्रता के दीवाने?

हिन्दू - मुसलिम थे हुए एक;
उनमें कोई मतभेद न था;
अंग्रेज शत्रु थे दोनों के;
जायें मारे, कुछ खेद न था।

पलटन बीसवीं संग ही थी;
उसके सैनिक ने वार किया;
उसकी पिस्तौली गोली ने
कर्नल को हत कर, गिरा दिया।

चैम्बर्स श्रीमती जो थीं वे
भी गिरीं भूमि पर मृत होकर ;
डॉक्टर थे फिलिप्स और ख्रिस्टी ,
हत हुए और कैप्टन टेलर ।

यों कैप्टन मैकडोनाल्ड और
दो लेफ्टीनेण्ट गये मारे ;
वे पेण्ट और हंडरसन थे ;
हत हुए उभय वे हत्यारे ।

हो गया सफाया मेरठ में
गोरों की पूरी पलटन का ;
मेरठवासी नागरिकों ने
ले लिया भार भावी रण का ।

दिल्ली को था सन्देश गया ,
' -अब नहीं रुकेंगे पूर्ण मई ;
ग्यारह को ही हैं पहुँच रहे ; '
सेना वीरों की वहाँ गई ।

' सब लोग चलें दिल्ली सत्वर ',
यह उन वीरों का नारा था ;
दिल्ली तैयार हुई ही थी ;
होना कुछ वारा - न्यारा था ।

सम्राट् बहादुर शाह जफर ,
बेगम थीं जीनत महल वहाँ ;
दिल्ली में अंग्रेजी शासन
के लिए रह गया ठौर कहाँ ?

केवल दर्जन भर मीलों का
ही दिल्ली - मेरठ में अन्तर ;
मेरठ से सैनिक पहुँच गये
ज्यों लेकर अपना ' छूमन्तर ' ।

पर समझ रहे थे बादशाह
कुछ और प्रतीक्षा करनी थी ;
पूरी तैयारी थी करनी ;
संगठन - सुधा भी भरनी थी।

पर देशभक्त सैनिक भारत
के आ पहुँचे यमुना - तट पर ;
था लाल किले को लेना ही;
करना प्रवेश अब है सत्वर ।

'जय बादशाह की, भारत की'
बोले, फिर आगे बढ़ आये ;
यह दृश्य देख अंग्रेज बहुत
आँश्चर्यचकित हो घबड़ाये ।

बढ़ गया किले का सैनिक दल
करने को उनकी अगवानी ;
'मारो सारे फिरंगियों को',
गूँजी यह देशभक्ति - वाणी ।

चौवनवीं पलटन का कर्नल
रिप्ले बोला - 'उनको टोको
जो दिल्ली पर चढ़ आये हैं ;
आगे बढ़कर उनको रोको ।'

हिन्दू - मुसलिम थे एक हुए ;
थे देशभक्ति के दीवाने ;
अंग्रेजों के बँगलों पर चढ़
गठे मिलकर सब मस्ताने ।

जो दरियागंज मुहल्ले में
बँगले थे, भस्म हुए पल में ;
दी आग लगा मस्तानों ने;
शव फेंक दिये यमुना - जल में ।

नागरिक सभी अब थे योद्धा;
अंग्रेजों के थे शत्रु प्रबल ;
'जय बादशाह' बोलते हुए
सैनिक जा पँहुचे राजमहल ।

सम्राट् स्वयं थे देशभक्त
विख्यात बहादुरशाह जफर ;
उनसे बोले सैनिक समस्त,
'हम सभी आपके हैं अनुचर ।'

सम्राट् परम आह्लादित थे ;
पर बोले 'कैसे दूँ वेतन ?
हो गया खजाना खाली है ;
मैं भी हूँ बना परम निर्धन ।'

बोले सैनिक चिन्ता न करें,
अंग्रेजों का धन लूटेंगे ;
लूटा सर्वस्व उन्होंने है ;
अब हम उनसे बदला लेंगे ।'

बारूद और शस्त्रास्त्रों का
था अंग्रेजी भण्डार पड़ा ;
वह शस्त्रागार गया लूटा
तो जोश आ गया बहुत बड़ा ।

अंग्रेज गये क्रमशः मारे ;
कुछ प्राण बचाने को भागे ;
सोलहवीं मई आ गई तो
दिल्ली के भाग्य पूर्ण जागे ।

था कोषागार गया लूटा ;
इस भाँति सुलभ हो पाया धन ;
अंग्रेज हट गये दिल्ली से
बाहर करने नव संयोजन ।

थे लगे पाँच ही दिन, परन्तु
मिल गई ऐतिहासिक थी जय ;
पर वह तो अस्थायी ही थी ;
था बना अभी मन में संशय ।

था संशय, हिन्दू - मुसलिम की
एकता नहीं रहने देंगे ;
गोरे बाँटेंगे ही फिर से ;
वे छलपूर्वक बदला लेंगे ।

★ ★ ★

सप्तम सर्ग

उग्रतरता

और करना उग्रतर अभियान था;
अग्निपथ का और अधिक विधान था।
पास दिल्ली और मेरठ के नगर;
मई की बीसवीं तिथि थी उग्रतर।

एक सैनिक ने दिखाई वीरता;
थी भरी स्वातंत्र्य हेतु अधीरता।
उसे ब्रिटिशों ने चढ़ाया स्तम्भ पर,
क्रान्ति की फैली वहाँ भी तब लहर।

एक ही बलिदान विजयी बन गया;
अलीगढ़ उन्मुक्त हो तत्क्षण गया।
ब्रिटिश अधिकारी पलायन कर गये;
निकट क्षेत्र सुवीरता से भर गये।

मैनपुर की पुरी थी आग्नेय तब;
मई की बाईसवीं तक जगे सब।
छोड़ कुल शस्त्रास्त्र भागे ब्रिटिश - गण;
देशभक्तों ने किया दिल्ली - गमन।

अस्त्र - शस्त्रों का मिला भण्डार था;
जोश का उत्ताल पारावार था।
फिर नसीराबाद या अजमेर हो;
ब्रिटिश भागे, आ रहा ज्यों शेर हो।

खण्ड क्षेत्र रुहेल भी आग्नेय था;
कुल पठानों का समाज अजेय था।
देशभक्त, महाव्रती, रणधीर था;
मुक्ति पाने के लिए प्रणवीर था।

मुक्त वह भी हो गया तत्काल ही;
फिर बरेली औ' मुरादाबाद भी।
था बदायूँ भी कहाँ पीछे रहा?
रक्त - नद सर्वत्र ब्रिटिशों का बहा।

जून की तिथि तीसरी जब आ गई,
लहर आजमगढ़ नगर में थी नई।
हो गया विद्रोह, भागे ब्रिटिश - गण;
सफल पूर्ण स्वतंत्रता का हुआ प्रण।

पहुँच काशी में गया फिर यह समर;
अब इलाहाबाद में पहुँची लहर।
चार को काशी नगर चंचल हुआ;
किन्तु यह रण सर्वथा असफल हुआ।

जौनपुर भी पाँच को था अति विकल;
आ गया आवेश था रण का नवल।
किन्तु काशी में विफलता थी मिली;
त्यों रही साफल्य - कलिका अधखिली।

तीर्थराज प्रयाग तो था पास ही;
क्या रहेगा वह ब्रिटिश का दास ही?
दुर्ग पर स्वाधीनता का केतु हो;
और संगम एकता का सेतु हो।

दुर्ग में थे देश के गद्दार भी;
देशभक्तों पर चले हथियार भी।
दुर्ग पर तत्काल जय पाई नहीं;
पर निराशा भी अभी आई नहीं।

जून की तिथि छह बड़ी अद्भुत हुई;
छठी पलटन युद्ध को प्रस्तुत हुई।
एक लेफ्टीनेण्ट झट मारा गया;
आ गया तब जोश का निर्झर नया।

छावनी की ओर थे सब गति - निरत;
तोप का भण्डार पाना था तुरत।
और कारागार को था तोड़ना;
बन्दियों की शक्ति को था जोड़ना।

'मुक्त हैं हम', यह हुआ जयघोष था;
नागरिक - गण में विजय का जोश था।
एक हिन्दू और मुसलिम थे सभी;
चाहते थे, मुक्ति मिल जाये अभी।

मौलवी जो थे लियाकत अली जी,
वे बने कप्तान, रणभेरी बजी।
चाहते थे दुर्ग को करना विजित;
हाँ, तभी शस्त्रास्त्र मिल सकते अमित।

तरुण, बालक, वृद्ध भी योद्धा बने;
चाहते थे शीघ्र विजयोत्सव मने।
अस्त्र - शस्त्रों की नहीं परवाह थी;
लोक - शक्ति अजेय और अथाह थी।

मुक्त पूरा नगर था सप्ताह भर;
लग रही स्वाधीनता थी यह अमर।
ब्रिटिश ने पूरा लगाया सैन्य बल;
किस तरह यह क्रान्ति रह पाती सफल?

था नील जनरल आततायी, क्रूरतामय, घोरतम;
वह था इलाहाबाद - काशी का प्रभारी उच्चतम।
हाँ, पूर्णतः प्रतिशोध का उसने बढ़ाया कार्य - क्रम;
उसका चला नरमेध - ताण्डव नग्न और नृशंसतम।

वह घोर ताण्डव चला पूरी शक्ति से;
दर्शक नहीं विचलित हुए निज भक्ति से।
क्या देशभक्ति कदापि मर जाती कहीं?
अन्यत्र हो सम्भावना तो दौड़ जाती है वहीं।

पहुँची जभी यह सूचना, नाना हुए आग्नेय तब;
आह्वान उनका था, लगाये देश - रण में शक्ति सब।
तो कानपुर भी हो गया स्वातंत्र्य - हित अभियानमय;
थे नागरिक - गण एक अनुपम चेतनामय, प्राणमय।

नाना रहे नेता चरम, शासक उदार महान् थे;
थे अजीमुल्ला खान उनके संग, जो मतिमान थे।
चिर देशभक्त अचूक थे, वे हिन्दुओं के प्राण थे;
वे देशभक्त - समूह का करने लगे निर्माण थे।

था लखनऊ भी युद्धरत स्वातंत्र्य की सम्प्राप्ति हित;
थे मौलवी अहमद वहाँ रण - संगठन में निरत नित।
हजरत महल बेगम वहाँ थीं शाह को उकसा रहीं;
पर शाह वाजिद अली में उत्साह उतना था नहीं।

कुछ रूप झाँसी का बना आग्नेय, जय - उत्साहमय;
वीरांगना रानी वहाँ लक्ष्मी बहन थीं चिर अभय।
थी उन्हें नाना ने सिखाई युद्ध की पूरी कला;
अंग्रेज उनको मानते अपने लिए भारी बला।

तिथि तीसरी थी जून की, दोनों हुए रण में निरत;
जब कानपुर का रण छिड़ा, झाँसी कहाँ रहती विरत?
यों लखनऊ भी संग ही था हो गया संग्राममय;
सर्वत्र ही इस युद्ध में थी देश ने पाई विजय।

वह जून का जो मास था, वह बना जय का मास था;
अपनी धरित्री थी बनी, अपना विजय - इतिहास था।
पर शीघ्र ही अंग्रेज लाये विजय - बल निज देश से;
स्थायी सफलता राष्ट्र की होती कहाँ आवेश से?

तेईसवीं तिथि जून की सौ वर्ष पूर्व रही विरल;
लाई पलासी - भूमि में भारत - पराजय का गरल।
सौ वर्ष बीते तो किसी विधि आ गई कुछ विजय फिर;
वह किन्तु तात्कालिक रही ; रहती भला किस भाँति चिर?

भारत महासुविशाल है; यह मात्र उत्तर में नहीं;
यह पूर्व, पश्चिम और दक्षिण छोड़ देता क्या कहीं?
सर्वत्र तो स्वातंत्र्य का यह रण नहीं संभव हुआ;
वह रहा खण्डित और भंगुर जो सुलभ गौरव हुआ।

इतिहास - भूमि बिहार की थी जागरूक सदैव ही;
पर वह नहीं थी पूर्णतः प्रस्तुत कि रण होता सही।
दो बन्धु जो थे वीरवर विख्यात सिंह कुँवर - अमर;
वे अल्पसाधनयुक्त थे, किस भाँति हो पाता समर?

ये चाहते थे, राज्य भर में हो व्यवस्थित संगठन;
जय ऐतिहासिक सुलभ हो, इस भाँति सम्भव करें रण।
किस भाँति पूरे राज्य को ये संगठित करते भला?
जागीर मध्यम थी, भला किस भाँति पाते रण चला?

साहस भरा था पूर्णतः कुछ कर दिखाने के लिए;
था शौर्य भी अनुपम विजय का ध्येय पाने के लिए।
ये वीर तात्या से गये मिलने सुदूर बिठूर तक;
ये दूरदर्शी थे परम, थी दृष्टि जाती दूर तक।

सोलह जुलाई को पराजय कानपुर में हो गई;
नाना हुए चिन्तित अमित, क्या योजना हो अब नई।
परिवार को ले संग, पहुँचे किसी भाँति बिठूर वे;
तो वीर तात्या ने कहा - 'अब भी नहीं मजबूर वे।'

शिवराजपुर तात्या गये, ब्यालीसवीं पलटन जहाँ;
रण को गई तैयार हो पलटन समूची ही वहाँ।
रुकते कहाँ नात्या भला? वे तुरत पहुँचे ग्वालियर;
तैयार की सेना वहाँ, लेकर चले निज पन्थ पर।

वे कालपी - शिवराजपुर के क्षेत्र में लौटे तुरत;
विजयी हुए उस क्षेत्र में, कुछ दिन चला था रण महत्।
था कम नहीं, विडहम वहाँ पहले पराजित हो गया;
अंग्रेज सेनापति वही था, रंग फिर लाया नया।

वह था दिसम्बर मास, भारत के लिए प्रतिकूल था;
अंग्रेज विजयी हो गये; छा गई भारत में व्यथा।
वह कानपुर का महल भी अब हो गया वीरान था;
नाना जहाँ शासक बने थे, सो गई वह जय - कथा।

पर कम नहीं था यह कि भारत विजय इतनी पा सका;
स्वाधीनता की ज्योति यह फिर छीन कर था ला सका।
यह कवि करेगा हिन्दुओं को, मुसलिमों को चिर नमन;
जो देशभक्त अचूक थे, कर ऐक्य दोनों का वरण।

चिर चाहिए ही ऐक्य भारत - बल बढ़ाने के लिए;
ज्यों दीप आवश्यक जलाना ज्योति लाने के लिए।
हो एकता - आलोक तो है भिन्नता लाती न तम;
करते रहें मानव सभी दिन राष्ट्र के हित पूर्ण श्रम।

★ ★ ★

अष्टम सर्ग

व्यथाः चिन्ता

थे कुँवर सिंह अतिशय चिन्तित,
कैसे होगा यह समर सफल?
विख्यात अखिल भारत में थे
इनके वीरत्व - समर कौशल।

इसमें कोई सन्देह नहीं,
ये थे वीरों में चरम वीर;
थे हार नहीं मानते कभी;
थे आशावादी, परम धीर।

...र्मन बीवी भी थीं प्रधीर;
...थीं वीरांगना ऐतिहासिक;
...रतीं श्रृगाल को भी मृगेन्द्र;
...णी में था प्रभाव मार्मिक।

संगीत - सौध की रानी थीं
तो रण में बनतीं मस्तानी;
थीं सहयोगिनी वीरवर की;
वे देशभक्त थीं दीवानी।

यदि चिन्ताग्रस्त हुआ करते
वीरवर, इन्हें ढाढ़स देतीं;
निज अनुपम छवि - मुस्कानों से
इनकी चिन्ताएँ हर लेतीं।

वे संग - संग थीं बढ़ जाती;
धन की चिन्ता थी रंच नहीं;
वीरवर जहाँ रण में जाते
वे भी जाती थी संग वहीं।

वे संग कालपी तक पहुँचीं ;
थे महाशूर ले साथ गये ;
वे शौर्य - गीत भी गाती थीं ,
रच देशभक्ति - स्वर नये - नये ।

रण - गुरु थे उनके कुँवर सिंह;
वे युद्धकला - निष्णात बनीं ;
रिपुओं पर करने में प्रहार
वे भीषण उल्कापात बनीं ।

छवि और कला हैं आवश्यक
वीरों की शक्ति बढ़ाने को ;
यह सुरुचि सुवीर सदा रखते ;
निजता देते बेगाने को ।

आश्चर्य - चकित थे सभी वीर ,
कैसा सुयोग था यह अनुपम ;
संगीत - कला का और समर -
कौशल का था अद्‌भुत संगम ।

कलाकार भी वीरात्मा ;
जगत् में प्राण जगाते हैं ;
निज हित को गौण बना देते ;
जनहित प्रधान कर पाते हैं ।

जो ऐसा करता नहीं , भला
क्या है वह सच्चा कलाकार ?
स्वार्थों का पथ अपनाता है ;
लोभी बनता है बार - बार ।

उच्चतम कोटि की थीं धर्मन ;
ऐसा आचरण दिखाया था ;
रह स्वार्थ - लोभ - कायरता से
उन्मुक्त , सुयश - धन पाया था ।

क्या सार्थकता है मानव की,
यदि नहीं राष्ट्र का सेवक है?
उत्सर्ग - शौर्य की वृत्ति न हो,
तो क्या शिल्पी या लेखक है?

चाहिए देश के प्रति स्वभक्ति ;
त्यों ही समाज के लिए त्याग ;
रूढ़ियाँ क्षार कर देने को
चाहिए क्रान्ति की जगी आग ।

उत्प्रेरक हो साहित्य सदा,
हों उत्प्रेरिका कलाएँ कुल ;
अहि जो समाज में होते हैं,
उनके विरूद्ध बन सकें नकुल ।

ऐसे ही तो थे कुँवर सिंह ;
थे विबुध, कलाप्रिय, देशभक्त ;
वाग्मिता उच्चतम थी इनकी ;
थे वैभव के प्रति अनासक्त ।

सर्वत्र मुग्ध थे वीर अखिल ;
मानते इन्हें थे सर्वोत्तम ;
सब स्यात् निभा पाते सदैव
इनको निज बल देने का क्रम ।

अनुपमा मिली थीं पत्नी भी ;
थीं रूपमयी - गुणवती परम ;
रहतीं समर्पिता पति के प्रति ;
रानी थीं, पर करतीं चिर श्रम ।

प्रेरणा हेतु वीरवर उन्हें
करते रहते थे सदा स्मरण ;
निरुपम उनकी छवि प्रोत्साहित
करती पति को करने को रण ।

शुकचंचु सदृश नासिका बढ़ाती
थी सुवीर की तीक्ष्ण बुद्धि,
आचरण विमल भरता रहता
पति के चरित्र में चिर विशुद्धि ।

अरुणिमा बढ़ाते शोणित की,
दाड़िम से बढ़कर अरुण अधर ;
मृग - दृग से बढ़कर थे लोचन ;
था स्मरण विभा देता पथ पर !

थी शालीनता पूर्ण उनमें ;
उनमें सहृदयता थी अपार ;
देवी - कल्पना सदृश वे थीं ;
कर्त्तव्यमयी , अतिशय उदार ।

बाधिका नहीं, साधिका सदा
वे वीर कुँवर के पथ की थीं ;
वाहिका , प्रगतिदायिनी सतत
वे इनके जीवन - रथ की थीं ।

रखतीं प्रगल्भता भी समुचित ;
वे थीं आदर्श प्रणयिनी भी ;
शुभ सकल्पों पर अटल - अचल ;
संघर्षों की थीं जयिनी भी ।

थीं इसी भाँति धर्मन बीवी ;
प्रणवीर कुँवर पथ - दर्शक थे ;
थे प्रेम - प्रदाता भी अनुपम ;
पूर्णतः सदा अभिभावक थे ।

पर मुख्य ध्येय था रण करना
भारत - स्वतंत्रता हेतु सतत ;
होना सुवीर को पड़ता था
मधु संस्मरणों से पूर्ण विरत ।

दासत्व - व्यथा झेलता हुआ ,
निज देश भला क्यों सदा रहे ?
शोषण - उत्पीड़न - विगलन का
संताप घोरतम नहीं सहे ।

निज राष्ट्र - व्यथा - पीड़ित प्रायः
ये महाशूर हो जाते थे ;
रह देशभक्त पूर्णतः वीर
चिन्ता भी मन में लाते थे ।

सन्तुलित और संयत नेता
ये निखिल देश में रहे विरल ;
ये थे विषपायी , कालजयी ;
हँसकर पीते थे काल - गरल ।

लपटों से भरा हुआ था पथ ;
भरते स्फुलिंग थे घोर दाह ;
इनको शीतल - सा कर देता
भारत जन - करुणा का प्रवाह ।

ये अखिल अनल पी जाते थे ;
जीने की रखते नहीं चाह ;
प्रतिहत हैं कहाँ वीर होते ?
रखते ये थे साहस अथाह ।

सन्तुलन और संयम के ये
रखते थे अनुपम कीर्तिमान ;
जो रखते हैं उद्देश्य महत् ,
होते चरित्र के विवस्वान् ।

यह काव्य नहीं है श्रृंगारिक ;
छवि - चर्चा अधिक नहीं वांछित ,
चिर देशभक्ति - वीरत्वभाव
से रहे मुख्यतः परिमण्डित ।

है वह लिप्सा - वासना - मुक्त
जो सदा राष्ट्र - अभिमानी है ;
जो स्वार्थ - वृत्ति की बलि देता ,
होता अवश्य बलिदानी है ।

ऐसे ही थे वीरवर कुँवर ;
ये प्रिय भारत के त्राता थे ;
जनसेवी , जनकल्याण - निरत ,
अभिनव जनभाग्य - विधाता थे ।

निज संस्कृति -भाषा - भक्त परम ;
बन पाते अभिनव निर्माता ,
होता सहयोगी कुल बिहार
तो स्वतंत्रता - रवि आ जाता ।

सारा भारत होता विमुक्त ;
यह श्रेय प्राप्त करता बिहार ;
जो चूक गया वह गया चूक ;
अवसर क्या आता बार - बार ?

कविराम राजकवि थे प्रधान ;
अप्रतिम वीरवर के सहचर ;
लिखते रहते थे शौर्य - काव्य ;
था काव्यपाठ का अनुपम स्वर ।

लिखते रम्यतम प्रकृति - सुषमा
भी अपने सुन्दर भारत की ;
जो स्वर्गकल्पना से भी बढ़ -
कर सुन्दर उस नद - पर्वत की ।

चित्रित करते थे कविता में
छवि अपने भारत - मधुवन की ;
भू , नभ , सागर , मैदानों की ,
घाटियों , प्रपातों , कण - कण की ।

गंगा , कृष्णा , कावेरी की ,
यमुना , नर्मदा कि लोहित की ,
सतलज , सरयू , नद शोणभद्र ,
नाविक - नौका , कुल वोहित की ।

उच्छल तरंग - मालाओं की ;
विहगों की , अखिल वनचरों की ;
केसर - क्यारियों , गुहाओं की ;
नीले , रजताभ निर्झरों की ।

चिर शस्य - श्यामला बंगभूमि
की , सौम्य कलिंग , वनांचल की ;
छवि अंग , मगध , वैशाली की ;
त्यों कारुष की , मिथिलांचल की।

दाँवा - अरण्य , सारण्य और
काशी , बलिया , चम्पारण की ;
उसकी जो बनती मुख्य भूमि
वीरवर कुँवर जी के रण की।

कितना चित्रित वे कर पाते ?
सारा भारत क्या रम्य नहीं ?
जो यहाँ वही जग में सम्भव ;
जो यहाँ नहीं , क्या सुलभ कहीं ?

वे पृथ्वीराज, प्रताप, शिवा
का भी इतिहास लिखा करते;
कवि चन्द और भूषण का भी
वीरत्व काव्य में थे भरते।

व्याघ्रसर - नमन करते, जिसके
थे निकट विजेता बने खान;
बन शेरखान से शेरशाह
जो बने राष्ट्र - शासक महान्।

यदि सासाराम बन सका था
गर्वालय सारे भारत का,
तो पुर जगदीश न क्या सकता
बन उसी भाँति पालक व्रत का?

यदि अरावली की पहाड़ियाँ,
या महाराष्ट्र - गिरिमालाएँ
दे सकती हैं संग्राम - विजय,
कैमूर न क्या दे आशाएँ?

रावी, रवितनया, जह्नुसुता
ने देखे कितने रण - ताण्डव!
तो शोणभद्र अरुणाभ न क्या
दे सकता हमें समर - गौरव?

जय और पराजय से बढ़कर
गौरव रहता संग्राम - निहित;
जो आज विजेता बनता है,
क्या हो सकता वह नहीं विजित?

गीता कहती है - 'करो समर;
भय और लोभ से ग्रस्त न हो;
है श्रेय कर्म में, फल के प्रति
हो लोभ नहीं, फल - त्रस्त न हो।'

गौरव रहता है रण में चिर;
वह परिणामों में निहित नहीं;
योद्धा प्रणवीर अमर होते;
फल करता उनको विजित नहीं।

जो हार मान लेता मनसा,
वह तो हारा ही रहता है;
अवरोध और प्रतिरोधों पर
जीवन का निर्झर बहता है।

प्रतिहत होता जो कभी नहीं
उस नर में ही तो जीवन है,
नारी भी हो तो क्या अन्तर?
क्या लिंग-भेद का बन्धन है?

कवि की वाणी होती अचूक,
यदि रहे क्रान्तदर्शी सदैव;
सच्चे योद्धाओं के मानस
हैं लोभमुक्त रहते तथैव।

वे पराजयों पर भी अपना
मानस-जय-ध्वज फहराते हैं;
वे अजर-अमर-अविजित रहते;
अविरत संग्राम चलाते हैं।

जब काव्य सुनाते थे कविगण,
योद्धावर होते प्रोत्साहित;
आह्लाद प्राप्त करते थे ये;
उत्साह नहीं रहता सीमित।

चिन्ता में और व्यथाओं में
चिर काव्य-सुधा बल देती है;
वह अपनी कला-चिकित्सा से
आधियाँ अखिल हर लेती है।

सारे रसायनों से बढ़कर
होता ही काव्य-रसायन है;
मृतवत् नर नवजीवन पाते;
जर्जर पाता नवयौवन है।

थे शुष्क काष्ठवत् नहीं कुँवर;
ये पूर्ण रसिक थे, रसमय थे;
था कला-शौर्य-संगम इनमें;
थे लोभमुक्त, चिर निर्भय थे।

भारत के निर्मल पंचतत्त्व
इनको निर्मलता देते थे ;
इनके तन के अंगों की भी
कुल क्लान्ति - श्रान्ति हर लेते थे ।

ये कुण्ठामुक्त सतत रहते ;
अम्लान सदा रखते थे मन ;
था शैशव से ही इस कवि में
इनके प्रति अनुपम आकर्षण ।

है क्षणिक रूप का आकर्षण ,
गुण का आकर्षण शाश्वत है ;
कर्मों का आकर्षण भी तो
रहता मानव में अविरत है ।

नारी हो अथवा नर , कर्मों
का होता सर्वाधिक महत्त्व ;
हैं गौण बाह्य वर्णाकृतियाँ ;
रहते प्रधान आन्तरिक तत्त्व ।

नवम सर्ग

बिहार - नेतृत्व

थी पाँच वर्ष पहले से ही जागी पटना में क्रान्ति लहर ;
हिन्दू - मुसलिम हो जागरूक , सोचते युद्ध थे आठ पहर ।
मुख्यालय पटना बाहर से तो पूर्ण शान्त ही लगता था ;
पर अन्तस्तल में विप्लव का अतिभीषण अनल सुलगता था।

थे यहाँ बहायी मुसलमान रहते अंग्रेजों के दुश्मन ;
वे मार भगाने को उनको करते ही रहते थे चिन्तन।
यों कृषक, श्रमिक, व्यवसायी भी चिर जागरूक ही रहते थे;
वे क्रान्ति - संगठन को देते धनदान , पर नहीं कहते थे।

थे जमींदार भी इसी भाँति विक्षुब्ध विदेशी शासन से ;
विप्लवियों को सहयोग दिया करते थे वे निज धन-मन से।
पटना में पुस्तक - विकेता थे पीर अली चिर जागरूक ;
वे विप्लवियों के नेता थे , उनका प्रभाव था चिर अचूक ।

थे अली करीम गया नगरी में त्यों ही नेता अद्वितीय ;
यों वारिसअली बन गये थे विप्लवियों के नेता वरीय ।
आरा , छपरा , चम्पारण में भी क्रमशः ज्वाला जागी थी ;
चिर चिन्ताग्रस्त जनगणों ने नयनों की निद्रा त्यागी थी ।

दानापुर में सातवीं और आठवीं पलटनें रहती थीं ;
अंग्रेज सताते थे उनको ; अपमान - ग्लानि वे सहती थीं ।
अंग्रेज कमिश्नर पटना का टेलर था रहता डरा हुआ ;
था वह नृशंसता के विष से विषधर से बढ़कर भरा हुआ ।

मुसलिम समाज तो था सीमित,उनका ही पहले दमन किया;
सेनानी पीर अली को नेता मान उन्हीं का चयन किया ।
टेलर ने आमंत्रित घर पर कर किया कपट ही तो भारी ;
कर पीर अली को गिरफ्तार , की प्राणदण्ड की तैयारी ।

पहले बोला -'माफी माँगो , विप्लव की तैयारी छोड़ो ;
जीवन से नाता तोड़ो या अंग्रेजों से नाता जोड़ो ।'
दृढ़ देशभक्त थे पीर अली , वे नहीं मरण से डरते थे ;
है एक दिवस तो मरना ही, यह सोच -समझ प्रण करते थे।

प्रण उनका था कि मरेंगे , पर भारत की शान बचायेंगे ;
जीवन है रण का महाक्षेत्र , पग पीछे नहीं हटायेंगे ।
दिखलायेंगे वक्ष ही सदा , निज पीठ कभी न दिखायेंगे ;
मर जायेंगे , पर देशभक्ति का झंडा नहीं झुकायेंगे ।

बोले कि 'मुझे मारो तुरन्त , प्रण नहीं कभी मैं छोडूँगा ;
जीते जी कभी नहीं तुमसे मैं कोई नाता जोडूँगा ।'
पहले यातना मिली उनको , पैरों में दीं बेड़ियाँ डाल ;
फिर चला हथौड़े , थे उनके पग से लेते शोणित निकाल ।

पर नहीं झुके वे; बोले -'मैं निज तन का कुल शोणित दूँगा;
प्रत्येक बूँद से मैं भारत की पावन धरती सींचूँगा।
विप्लवी अमित मेरी इन बूँदों से होंगे ही उत्प्रेरित ;
वे नहीं विदेशी शासन को रहने देंगे निर्भय - जीवित ।'

पा मृत्युदण्ड वे अमर हुए , वह क्रान्ति - लहर तो दबी नहीं;
दानापुर की छावनी देशभक्तों की थी क्या दूर कहीं ?
बैरकपुर के विप्लव का भी सन्देश वहाँ सब ने पाया ;
मेरठ से भी सन्देश मिला तो क्रान्ति - भाव सब में आया ।

पच्चीस जुलाई अट्ठारह सौ सत्तावन को घोष हुआ ;
मारना फिरंगी - दल को है , यों तूफानी आक्रोश हुआ ।
अंग्रेजो को यमपुर पहुँचा - पहुँचा कर ही अब मरना है ;
रणचण्डी का खप्पर फिरंगियों के शोणित से भरना है ।

सम्पर्क बना था पहले से ही कुँवर सिंह सेनानी से ;
आगे बढ़ना ही था सबको मनसा , कर्मणा , सुवाणी से ।
'भारत की खोई स्वतंत्रता को फिर अवश्य ही पाना है ;
जीना है अब होकर स्वतंत्र , या रण करते मर जाना है ।

इतिहास -भूमि प्यारा बिहार पीछे कदापि क्या रह सकता ?
जो गौरव-श्रृंग खड़ा युग -युग से,वह क्या यों ही ढह सकता?
प्यारे बिहार की महिमा को , गरिमा को सदा बचाना है ;
शाश्वत अभिन्न - अविभाज्य अंग भारत का इसे बनाना है।

भीषणतम था तूफान खड़ा , बूढ़ों में भी तरुणाई थी ;
जो रुके नहीं रोके हिमगिरि के , ऐसी ही अँगड़ाई थी ।
अरुणाई शोणित की अपूर्व थी , रण की दुर्दम ज्वाला थी;
थे मुण्डे सभी तैयार , गूँथनी नरमुण्डों की माला थी ।

चल पड़े वीर दानापुर से वीरवर कुँवर से मिलने को ;
जाना ही था आरा उनको , गुल वहीं सभी थे खिलने को ।
केवल बिहार में नहीं , देश में भी थे अद्वितीय नेता ;
पाकर इनकी नेतृत्व - शक्ति बन जायेंगे सब रणजेता ।

गणवेश फाड़ डाले सब ने , अम्बरभेदी रणघोष किया ;
होती सहिष्णुता की सीमा ;-मर मिटने का संकल्प लिया ।
पर यों ही मरना कभी नहीं , पहले फिरंगियों को मारें ;
तोपों के सम्मुख भी कदापि पौरुष अपना न कभी हारें ।

साहस को रखना है अजेय ; पलटनें तीन खाली कर दें ;
तीनों पलटने चले आरा , पथ में भी विप्लव - बल भर दें।
दानापुर में बारूदो से है भरा तोपखाना , तो क्या ?
यदि देशभक्ति के अर्पण में हो निश्चित मर जाना, तो क्या?

पटना से पश्चिम दानापुर , दानापुर से पश्चिम आरा ;
आरा जाकर करना ही है अंग्रेजों से वारा - न्यारा ।
मिल जायेंगे ही कुँवर सिंह , ले लेंगे रण की बागडोर ;
'जय कुँवर सिंह, जय कुँवर सिंह', सब चले उठाते हुए शोर।

'अब नहीं गुलाम रहेंगे' , सब आजादी के दीवाने थे ;
भारतमाता की जय के सब गाते पुरजोश तराने थे ।
इसमें था कुछ सन्देह कहाँ ? वे सब के सब मस्ताने थे ।
स्वातंत्र्य - भाव का दीप जला , सब उमड़े बन परवाने थे।

उड़ चली धूल ज्यों हो अबीर , ग्रामीण बन गये दीवाने ;
थे ग्राम-ग्राम से निकल रहे सब तरुण - वृद्ध बन मस्ताने।
बज उठी सहज ही रणभेरी , मुखरित सब श्रृंगी - वाद्य हुए;
डंके बज उठे डमा - डम थे ; विस्तृत सारे थे खाद्य हुए ।

थे भूल गये ज्यों भूख प्यास ; थी प्यास शत्रु के शोणित की;
जो भारतमाता के रिपु थे , वे रहें भला क्यों जीवित ही ?
गाँवों से निकले अस्त्र अखिल , हो गईं चमाचम तलवारें;
आरा तक धैर्य निभाना था , जाकर अंग्रेजों को मारें ।

थे कुँवर सिंह घोषित बागी अंग्रेजी शासन के द्वारा ;
था तभी इन्होंने ब्रिटिशों को रण हेतु हृदय से ललकारा ।
अठ्टारह सौ सत्तावन में थी जून मास तिथि अष्टादश ;
अंग्रेजों ने आमंत्रित कर चाहा करना इनको बेबस ।

पर वीर कुँवर थे स्वाभिमान के पुंज , नहीं झुकने वाले ;
अंग्रेजों के हित बन सकते थे ये आफत के परकाले ।
क्या स्वर्ण , रौप्य , रूपलियों के ये बने कभी परवाने थे ?
ये बने देश के थे प्रतीक ; भारत - रवि के दीवाने थे ।

अपना अपमान राष्ट्र का भी अपमान समझते रहते थे ;
ये देश - प्रतिष्ठारक्षा में सारी विपदाएँ सहते थे ।
रुपये नौ लाख आय वार्षिक ये पल में सकते क्या न त्याग?
थी बुझी नहीं , जलती ही थी दृढ़ देशभक्ति से भरी आग।

थे हुए वर्ष सत्ताइस ही इनके जीवन के गद्दी पर ;
जब हुआ पिता का निधन तभी इन पर यह भार पड़ा सत्वर।
लगभग अस्सी की आयु हुई , इस में कोई सन्देह नहीं ;
पर जहाँ जोश , रहता सदैव तारुण्य-शक्ति का वास वहीं।

सर्वदा स्वास्थ्यरक्षा का ये जन - जन को मार्ग दिखाते थे ;
है निहित स्वास्थ्य में शक्ति सदा, येजन -जन को बतलाते थे।
आत्मिक बल के ही संग सदा दैहिक बल भी रखते अनुपम;
वार्द्धक्य आ गया अब इनका , अंग्रेज पालते थे यह भ्रम ।

अप्रैल मास से ही थे ये कर रहे समर की तैयारी;
सर्वत्र उड़ाते रहते थे ये रण - ज्वाला की चिनगारी ।
पहले से सेना सुलभ न थी , पर ये रचते ही जाते थे ;
निज देशभक्ति - बल से क्रमशः सेना की शक्ति बढ़ाते थे।

ग्रामीण जनों को भी क्रमशः दे रहे प्रशिक्षण थे रण का ;
सबको समझाते थे कि मूल्य क्या है दासों के जीवन का ?
कुछ मूल्य नहीं , यह जीवन तो बदतर है सदा मरण से भी;
ये पूर्ण समर्थन थे पाते जाते सदैव जन - जन से भी ।

थे कुछ सहस्त्र सैनिक प्रस्तुत इस भाँति इन्होंने कर डाले ;
जो मरते दम तक नहीं कभी थे रण - पथ से हटने वाले ।
धन और आयु में क्या रहती ? रहती है शक्ति मनोबल में;
इस बल को जगा चुके थे ये जनपद के व्यापक अंचल में ।

तैयार हो गईं महिलाएँ , चूड़ियाँ अभी न खरीदेंगी ;
तलवारें हाथों में लेकर गोरों को मार खदेड़ेंगी ।
यदि वारांगना नहीं रहकर है वीरांगना बनी धर्मन ;
तो गाँवों की महिलाएँ क्या कर सकतीं नहीं शत्रु से रण ?

पाण्डे सेना तैयार हुई चलने को मंगल के पथ पर ;
सारे पाण्डे रण कर सकते आगे बढ़ , देशभक्त बन कर ।
मुसलिम भी थे तैयार , एक मुसलिम तो सेनापति भी थे ;
वे भूल गये थे भेदभाव , रखते अक्षुण्ण सुमति भी थे ।

थे रोहतास के अंचल में बड्डी में खुढ़िया के समीप
जो सिंह निशान , वीरता का रखते प्रज्वलित सदैव दीप।
प्रेरित हो और प्रशिक्षित हो, वीरवर कुँवर के अनुगामी
वे भी हो गये वीरता में , रण के दृढ़ निश्चय में नामी।

था वातावरण बन चुका , जो रण को कर सकता था सम्भव;
दे सकता था कुल रणवीरों - प्रणवीरों को अभिनव गौरव।
सन्देश कुँवर ने पाया था , दानापुर के सैनिक आते;
नेतृत्व सम्हालें परम वीर, इस वसुधा से जाते - जाते।

इसमें कोई सन्देह नहीं, अब घमासान होना ही था;
इस रण का तो नेतृत्व - भार पूरा इनको ढोना ही था।
पर समय नहीं इनको पूरी तैयारी का था मिल पाया;
पहुँचेंगे सैनिक दानापुर के आरा में, मन घबड़ाया।

छब्बीस जुलाई को पहुँचे आरा, उनका स्वागत करने;
इनके दर्शन उन वीरों में थे अद्‌भुत जोश लगे भरने।
उत्तर भारत में हुई हार का बदला कैसे लिया जाय?
पर इसके हेतु युद्ध के सिवा अन्य क्या था उपाय?

करना पड़ता है युद्ध शत्रु यदि नहीं दुराग्रह से हटता;
सोचना नहीं है न्याय-समर में किसका -किसका सर कटता।
यदि बचें देश - द्रोही तो उनको भी समाप्त कर देना है;
रिपु का सारा आक्रामक बल अविलम्ब छीन ही लेना है।

★ ★ ★

दशम सर्ग

समर - संचालन -१

दानापुर से सैनिक आये;
नारा था 'कुँवर सिंह की जय';
कोइलवर से आरा तक था
उनका स्वागत होता निर्भय।

भलुहीपुर पहुँचे तो संख्या
उनकी थी बढ़ी हुई व्यापक;
सर्वत्र सम्मिलित होने को
आ गये ग्रामजन पथमापक।

आरा में स्वागत का सुदृश्य
था परम ऐतिहासिक अनुपम ;
वह दृश्य कल्पनातीत और
था लोकोत्साह - समुद्र चरम ।

वीरवर कुँवर थे चरम वीर;
ऊर्जा - उत्साह - महार्णव थे;
जनहृदय - जयी जननायक थे;
योद्धाओं के गुरु गौरव थे।

तो देवकल्पना से बढ़कर ,
कण - कण करता अभिनन्दन था ;
क्या सीमित था अभिनन्दन तक ?
सर्वत्र चरम सम्पूजन था ।

'जय कुँवर सिंह की' , 'भारत की
जय ' का वह अद्भुत नारा था ;
जनसिन्धु तरंगित था अपार;
होना ही वारा - न्यारा था।

जनगण - संकल्पों का सुदृश्य
था महामहोत्सव से बढ़कर ;
उत्सर्ग - भाव था हिमगिरिवत् ;
था देशभक्ति - बल प्रलयंकर ।

गोरे शासन के हेतु प्रलय
ही तो था अब होने वाला ;
उसकी रक्षा थी नहीं वहाँ ;
जब रण की धधक उठी ज्वाला।

श्वेताश्व कुँवर का था अपूर्व ;
वह व्याघ्र - सिंह से बढ़कर था ;
थे कुँवर अग्निपंथी अदम्य ;
थे अनल नयन , गर्जन - स्वर था ।

पीना है उनका रक्त आज ,
जो पीते थे भारत - शोणित ;
होगा विनाश उनका , जिनके
शोषण से थे जनगण पीड़ित ।

देखते - देखते पल भर में
रण भड़क उठा हो प्रलयंकर ;
गोलियों और तलवारों से
फूटा घन कर्ण - विदारक स्वर।

बन्दूकें बोलीं 'तड़ - तड़ - तड़';
गोलियों चल पड़ीं दन - दन - दन;
तलवारें चमकीं चम - चम - चम ;
उनका गति - स्वन था सन - सन - सन।

पद - संचालन दिखता न कहीं ,
श्वेताश्व, कुँवर का दौड़ा जब ;
लगता कि बन गया वह झंझा ;
था नहीं देखना सम्भव अब ।

गति नहीं दिखाई देती थी ;
वह मात्र सुनाई देती थी ;
लगता कि भूमि से अम्बर तक
रण - गति अँगड़ाई लेती थी।

कहना क्या सेनापति - गति का ?
क्या कहीं कुँवर थे दृश्यमान ?
क्या दर्शन - क्षम थे जन - लोचन ?
वर्णनातीत थे विवस्वान ।

ये निखिल विश्व - सेनापतियों
के विश्ववंद्य सेनापति थे ;
इतिहास स्तब्ध हो जाता है ,
ऐसी रखते निज रण - गति थे ।

इनकी इस महाविचक्षणता
को चक्षु करें क्या अवलोकित ?
लेखनी हुई कवि की अक्षम ;
किस भाँति करे यह गति चित्रित ?

जब था वार्द्धक्य तरुण अनुपम ,
तो कैसी होगी तरुणाई ?
कल्पनातीत सर्वत्र - सदा ;
थी जाने किस जग से आई ?

गोरों का कोषागार हुआ,
देखो, पल में ही पूर्ण विजित;
बन्दी न रहे अब कारा में;
उन्मुक्त हुए, थे आह्लादित।

वे भी तो बने राष्ट्र - सैनिक,
बनकर गोरों के प्रतिशोधक;
था तत्त्व न कोई आरा में
जो बने विजय में अवरोधक।

कार्यालय सारे के सारे
पल भर में ही हो गये ध्वस्त;
ज्यों वे बालुका - विनिर्मित हों;
हो गये फिरंगी स्वतः पस्त।

आरा का किला बचा अब था;
घेराबन्दी उसकी कर दी;
यह तीन दिनों तक रही बनी;
भीतर भी महाभीति भर दी।

...तर थे गोरे और सिक्ख,
...ा थे अंग्रेजों के सैनिक;
...नापुर से आये ही थे
...ग्रजी सैनिक अधिकाधिक।

ले अर्द्धसहस्त्र सिक्ख - गोरे
आया दानापुर से डनबर,
जो था कप्तान क्रूरतामय;
मृत्तिका नहीं, तन था प्रस्तर।

...नतीस जुलाई की तिथि थी;
...ोरे सैनिक अधिसंख्य रहे;
'आरा हाउस' कहलाता था,
...ह किला, न ढाहे कभी ढहे।

दानापुर था आश्वस्त, किन्तु
फिर भी गोरे थे त्रस्त हुए;
आते ही आते आरा में
वे रण करने में व्यस्त हुए।

पर वीर कुँवर की तुलना में
उनका रण क्या सकता था चल ?
क्या विजय प्राप्त कर सकते थें
ले गोली - बारूदों का बल ?

डनबर भी वहाँ गया मारा ;
निकटस्थ आम्र के कानन में ;
भारत - सैनिक तो थे अदृश्य ;
वे दिखते नहीं वहाँ रण में।

दिन में ही सब निश्चिन्त हुए ;
पर निशा रंग कुछ यों लाई;
तरुओं के ऊपर से दन - दन
गोलियाँ गईं जब बरसाई।

वह वीर कुँवर का कौशल था,
निज सैनिक छिपा दिये तरु पर ;
रजनी के घुप्प अँधेरे में
गोलियाँ लगीं आने सत्वर ।

इस कौशल की तुलना क्या हो ?
यह सदा रहेगा अतुलनीय ;
ज्यों अतुलनीय थे वीर कुँवर ;
सेनापतियों में अद्वितीय ।

डनबर के सैनिक निहत हुए ;
भागे केवल पचास बच कर ;
डनबर भी गया वहीं मारा ;
मानता न था निज को नश्वर ।

विद्युत्गति से जय की सब ने
सूचना जिले भर में पाई ;
सर्वत्र जयोत्सव मना और
अद्भुत प्रहर्ष - धारा आई ।

जय - ध्वजा गईं तब फहराई ;
वीरवर कुँवर सम्राट् बने ;
इस विजय - पर्व पर दीपोत्सव
जैसा जन - उत्सव क्यों न मने?

इस रण का था यह प्रथम चरण ;
क्या चार दिनों की थी बिसात ?
आगे ही था आने वाला
भीषणतम रण का चक्रवात।

गणवेश - रंग भी था कारण
भारत की सेना की जय का ;
गोरों का था गणवेश श्वेत ;
यह भी था हेतु पराजय का ।

वे कृष्णपक्ष के तम में भी
अपने को नहीं छिपा पाते ;
था भारत का गणवेश कृष्ण ;
सैनिक न अतः देखे जाते ।

दो दिन ही तो थे टक्कर के ;
इनमें ही निहत हुआ डनबर ;
अपमान घोरतम पाया था ,
गोरों ने यहाँ विजित होकर ।

मेजर आयर दानापुर से
चल पड़ा बड़ी सेना लेकर ;
लेकर तोपों का अहंकार,
दौड़ा वह आरा के पथ पर ।

जो सैनिक कुँवर सिंह के थे ,
वे इनको घर तक पहुँचा कर ,
आरा को थे वापस आते ;
पर पथ में ही विरमे सुनकर ।

संवाद कुँवर ने भी पाया ,
ये फिर सत्वर तैयार हुए ;
थे रण को बना चुके जीवन ;
कुछ युद्ध न उनपर भार हुए ।

आरा तत्काल पहुँचते क्यों ?
निज सेना ली पथ में बटोर ;
आयर को यह सूचना मिली ;
निकला लेकर सेना अथोर ।

भय था उसको, आरा आकर
फिर कुँवर सिंह जय पायेंगे;
आयर भी तो हत हो सकता,
जब कुँवर सिंह लड़ जायेंगे।

इसलिए बढ़ चला वह आगे;
पथ पर कितनी होगी सेना?
फिर कुँवर कहाँ तक टिक सकते?
है सरल पराजित कर देना।

थे आठ दिनों तक व्यस्त कुँवर
लड़ने में और बचाने में;
नारियाँ और शिशु बचे रहें,
थे निज मनुजत्व निभाने में।

कम नहीं, दुर्ग में आरा के
ये सबको रक्षित रख पाये;
कर सके किसी विधि यह प्रबन्ध,
भारत पर दोष नहीं आये।

भारत की गरिमा - महिमा का
है क्या यह नहीं प्रमाण परम?
आयर आ गया तुरन्त वहाँ
करने को इनसे युद्ध चरम।

था बीवीगंज समीप, वहाँ
ही घमासान संग्राम छिड़ा;
थी दो अगस्त की तिथि, जिस दिन
आयर आकर था वहाँ भिड़ा।

यह थी भिड़न्त वृद्धावस्था
में और विदेशी यौवन में;
थे कुँवर सिंह फिर भी विजयी;
पीछे थे नहीं कभी रण में।

तब आयर ने निज तोपों से
भीषण वर्षा की गोलों की;
जैसी भीषण वर्षा होती
तीव्रतम वृष्टि में ओलों की।

दो दिन इस रण में लगे, किन्तु
बच गया मान फिर भारत का;
थे "वीर कुँवर" उसके प्रतीक;
पालन कर सके महाव्रत का।

ये बुद्धिमान थे चरम, अतः
सोचा कि कठिन है लड़ पाना;
था कहाँ बुद्धि - कौशल - सूचक
ध्वंसक तोपों से भिड़ जाना?

आयर भी लौट चला आरा,
आरा का दुर्ग बचाने को;
जो हटा ब्रिटिश ध्वज था, उसको
फिर आरा में फहराने को।

पर उसने की अति नृशंसता;
नागरिकों का संहार किया;
महिलाओं, शिशुओं को भी तो
उसने मरवाया, मार दिया।

कितना अन्तर था वीर कुँवर
में और श्वेत सेनानी में!
चाहिए उसे था क्या न डूब
मरना चुल्लू भर पानी में?

जय या कि पराजय में क्या है?
सर्वोपरि तो है मानवता;
क्या नर अमानुषिक बन जाये?
औरों पर लादे परवशता?

निज स्वार्थ हेतु शोषण करना
क्या कभी मनुष्योचित होता?
पाशविक वृत्ति के परिचय से
क्या मानव सम्मानित होता?

भारत ने रिपु की महिलाओं,
शिशुओं की रक्षा की पूरी;
पर गोरों ने की नृशंसता;
दोनों में है कितनी दूरी!

यों स्वाभिमान से जेता बन,
थे कुँवर सिंह लौटे घर को ;
फिर लगे सिखाने युद्ध - कला
ये अंचल के नारी - नर को ।

था ज्ञात इन्हें कि समर का यह
है अन्तिम चरण कदापि नहीं ;
करना ही होगा पुनः युद्ध ,
वह आ जायेगा जहाँ वहीं ।

दिन - रात जागते , भारत - हित -
योद्धा को नींद नहीं आती ;
जीवन - दीपक में जलती थी
चिर जन्मभूमि - जय की बाती ।

★ ★ ★

एकादश सर्ग

समर - संचालन -२

यों तो हो गये समर दो - दो ;
तीसरे समर की तैयारी
भी वीर कुँवर करते अब थे ;
क्या जाने कब आये बारी ?

क्या राजमहल का सुख पाना ?
क्या कहलाना कोई नरेश ?
जब राष्ट्र व्यथित हो , शोषित हो ?
जब हो परवशता - ग्रस्त देश ?

सच है कि अभी तक युद्धों में
गोरों ने थी मुँह की खाई;
पर उनकी अमानुषिकता में
अब तक थी कमी नहीं आई।

इस ओर न आई आँच कभी
थी भारत की मानवता में;
वीरवर सुरक्षक थे, रखते
गति सदा उत्तरोत्तरता में।

तत्पर थे रहते, क्योंकि किसी
पल धोखे से आ सकते थे;
गोरे तो थे पूरे करैत;
चुपके से घुस जा सकते थे।

वे महाछली थे, विषधर थे;
उनको मानव क्या कह सकते?
उनके रहते वीरवर कुँवर
निश्चिन्त कभी क्या रह सकते।

वृक युद्ध - कुशल थे अद्वितीय;
जीवित यदि वीर शिवा रहते,
इनको कहते ही वे अपूर्व;
कैसे वे भला नहीं कहते?

अंग्रेज मानते थे लोहा;
थे सेनापति इतिहास - विरल;
यों विश्ववंद्य, भारत - गौरव,
थे कीर्त्तिमान रच रहे नवल।

ये रोहतास की ओर गये,
नव सैन्य - संगठन - लक्ष्य लिये;
लिख सका नहीं इतिहास कभी,
किस भाँति इन्होंने यत्न किये।

ये एक दिवस भी कहाँ कभी
निज पुण्य सौध में रह पाये?
थे विकल कि स्वतंत्रता - रण में
थोड़ी भी कसर न रह जाये।

चाहे जो भी परिणाम रहे,
हो चिर कर्त्तव्यों का पालन;
जंगल में भी मंगल माने,
ऐसा हो वीरों का जीवन।

प्रासादों का व्यामोह न हो;
त्यों हो न स्वर्ण - सिंहासन का;
विक्षिप्त न हो जाये मानव,
त्रसरेणु तक न हो यदि धन का।

कुछ भी साधन हो भले नहीं;
जीवन - रण करना है तथापि;
निज देशभक्ति, सिद्धान्त - पन्थ
चाहिए त्यागना क्या कदापि?

आदर्श लोकनायक थे ये,
विचलित न कभी होने वाले;
ये धीरोदात्त सुयोद्धा थे;
पल एक नहीं सोने वाले।

ा, अकस्मात् आ गया समर,
ा महासैन्य लाया आयर;
ी अंग्रेजी साम्राज्य - शक्ति;
ढ़ चला कुँवर - पुर के पथ पर।

था पुर जगदीश कुँवर - पुर ही;
आयर चाहता, बने शासक;
वहा बना कुँवर को ले बन्दी;
हो ब्रिटिश राज का संस्थापक।

ार वीर कुँवर थे महावीर;
थे क्या कदापि रुकने वाले?
अरि प्रलयंकर भूधराकार
हो तो भी क्या झुकने वाले?

निज सैनिक लेकर बढ़े वीर;
दुलउर तक पहुँच गये सत्वर;
आयर से वहाँ भिड़न्त हुई;
हो गया पराजित वह पथ पर।

था पुर जगदीश लक्ष्य उसका ;
जब लौटे कुँवर जयी होकर ,
फिर वह चुपके से बढ़ आया ;
कुछ अधिक ब्रिटिश सेना लेकर ।

हो गया कुँवर - पुर युद्धस्थल ,
आ डटे नागरिक भी रण में ;
वीरवर कुँवर थे रहते ही ,
हो परिकरबद्ध , रणांगण में ।

हो गया समर अति घमासान ;
दोनों के सैनिक हुए निहत ;
नागरिक कई थे खेत रहे ;
हो गया नगर अति क्षत - विक्षत ।

बारह अगस्त की तिथि काली
थी , आगे रण हो गया कठिन ;
आते ही हैं नर - जीवन में
यदि सुदिन कभी तो फिर दुर्दिन ।

दुर्दिन में भी रणवीर कुँवर
का प्रण रह गया अटल - अविचल ;
टलना पड़ गया नगर से तो
भी हुए नहीं पल एक विकल ।

चिर युद्ध - पुरुष, चिर शौर्य -पुरुष ;
इनका निवास था रण - प्रांगण ;
मरते दम तक रख सकते थे
अपना अजेय - अक्षय यौवन ।

थी भले जरावस्था भारी ,
पर थे रहते गतिमय - चंचल ;
श्वेताश्वारोही चलते तो
सर्वत्र मचाते उथल - पुथल ।

बदला लेना होगा अवश्य ;
जाकर प्रदेश से बाहर भी ;
करना स्वदेश का रण होगा
चिर महामरण के पथ पर भी ।

ये सासाराम और नोखा
जाकर यह जोश जगा आये;
सहयोग पूर्ण पाने का ये
जनगण से आश्वासन लाये।

उत्तर प्रदेश पड़ गया शान्त
था, उसको पुनः जगाना था;
अंग्रेज हो गये थे जेता;
फिर उनको सबक सिखाना था।

लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे
से भी मिलकर बढ़ जाना था;
हाँ, दूर मध्य भारत में भी
उत्साह - प्रदीप जलाना था।

जब छब्बीसवीं अंगस्त हुई;
ये पहुँचे दूर विजयगढ़ तक;
था मिर्जापुर के निकट बसा;
गर्वोन्नत रखता था मस्तक।

खलबली मच गई ब्रिटिशों में;
हो गये क्रान्तिकारी बुलन्द;
था महाकाव्यवत् बना समर;
प्रतिदिन आते थे नवल छन्द।

राबर्ट्सगंज, रीवाँ, बाँदा
के संग रामगढ़ हुआ सजग;
'जय कुँवर सिंह' के नारों से
गूँजा जनपद पूरा लगभग।

अपने अंचल में वीर कुँवर
ने जो वीरत्व दिखाया था,
दृढ़ देशभक्ति, उत्साह, शौर्य
का उसने मार्ग बताया था।

ये एकच्छत्र बने नेता;
इनमें सबका विश्वास जगा;
ऊर्जा अपार, सन्देश अमर
पाने में जो भी समय लगा।

था किन्तु समय तो लगना ही ;
दुर्लभ प्रचार के माध्यम थे ;
गति के माध्यम भी थे सीमित ;
नद , गिरि , अरण्य भी दुर्गम थे ।

घातक वनचर थे भरे हुए ;
ग्रामों में था अति अन्धकार ;
थे नगर अल्प लघु यत्र - तत्र ;
कैसे सम्भव होता प्रचार ?

पर दृढ़ संकल्पी मानव तो
रहता है अपराभूत , अभय ;
यदि जाना आवश्यक होता
तो जा सकता है किसी समय ।

जाते थे जहाँ - जहाँ , रण का
उत्साह अमित जग जाता था ;
'जय कुँवर सिंह' के नारों से
जनपद नवयौवन पाता था ।

ाभा , पटियाला , जींद ही नहीं
। गद्दारी के पथ पर ;
या सभी वीरता से मरते ?
या जीते देशभक्त बनकर ?

प्राय: जन रहते स्वार्थ - लोभ
के चक्कर में ही पड़े हुए ;
देते समाज को बल वे क्या ?
वे तो होते हैं सड़े हुए ।

दुख था कि न थीं लक्ष्मीबाई ;
वे तो थीं असमय दिवंगता ;
रण किया कानपुर में जाकर;
साफल्य भला क्या मिल सकता ?

कालपी , कानपुर , औ' बिठूर ,
लखनऊ इसी विधि ग्रस्त हुए ;
पर कुँवर कानपुर में लड़कर ,
लखनऊ - गमन में व्यस्त हुए ।

जो देशभक्त होते न सुदृढ़,
चल पाते नहीं अग्निपथ पर;
पर वीर कुँवर तो थे दृढ़तम;
थे अग्नि - पथिक, अविजेय, प्रखर।

लखनऊ में मिले कुछ रुपये;
देने सम्मान बढ़े नवाब;
आजमगढ़ का फरमान दिया;
फिर दिया सरोपा लाजवाब।

ये गये अयोध्या पहुँच तुरत,
करने को सरयू में मज्जन;
कर स्नान, बढ़ गये फिर आगे;
करना था बढ़कर व्यापक रण।

था ध्येय इलाहाबाद और
काशी को मुक्त करा लेना;
आजमगढ़, गाजीपुर को भी
समरांगण पुनः बना देना।

अट्ठारह सौ अठ्टावन की
जब मार्च सु - अष्टादश आई,
तो वीर कुँवर ने पुनः युद्ध
के लिए जगाई तरुणाई।

बीबा के मिले क्रान्तिकारी;
बल कुँवर सिंह ने सुदृढ़ किया;
पर मिलमन ने तोपें, सैनिक
लेकर झट धावा बोल दिया।

यह तिथि बाईस मार्च की थी;
हो गई प्रबल तत्क्षण भिड़न्त;
पर अतरौलिया न बच पाई;
गोरों ने पाया नववसन्त।

पैदल सेना छह गुनी कुँवर
के पास हो गई गोरों से;
आक्रमण किया अंग्रेजों ने;
पर हार गये वे जोरों से।

मिल्टन ने मानी हार तुरत ;
भागी उसकी सेना सारी ;
कोसिल्ला तक वह गई भाग ;
फिर थी आगे की तैयारी ।

आ गई मार्च की अट्ठाइस
तारीख, युद्ध आया सर पर ;
था कर्नल डेम्स अहंकारी,
तो महावीर थे सिंह कुँवर ।

ये पहुँचे आजमगढ़ सत्वर,
लेकर निज अतुलनीय कौशल ;
बारह सहस्त्र निज सैनिक थे ;
मिल गई समर में विजय विरल ।

अंग्रेज गढ़ी में छिंपे तुरत,
लज्जित हो, प्राण बचाने को ;
पर उन्हें तड़पना ही पड़ता
प्रतिदिन दो भोजन पाने को ।

काशी - प्रयाग को लक्ष्य बना,
योद्धावर कुँवर बढ़े आगे ;
कैनिंग का शासन घबड़ाया ;
भय था कि नहीं सेना भागे ।

क्रीमिया - युद्ध - जेता जो था,
वह लार्ड मार्क कर बढ़ आया ;
कर चुके आक्रमण काशी पर
थे कुँवर, लार्ड तोपें लाया ।

तोपें, करि, सैनिक, घुडसवार ;
वह छह अप्रैल भयावह थी ;
ये साधन कहाँ कुँवर पाते ?
थे स्वयं किन्तु रण - महारथी ।

वृक युद्ध कर दिया पीछे से ;
सेवक भी सैनिक बने तुरत ;
तोपें कुछ काम नहीं आईं ;
अंग्रेज हार बैठे हिम्मत ।

कर दिया कुँवर ने अग्निकाण्ड ;
गोरे नितान्त हो गये भीत ;
तब लार्ड मार्क कर लौट पड़ा ;
आजमगढ़ में तो मिले जीत ।

इस बार कुँवर को वहाँ नहीं
अन्ततः विजय - श्री मिल पाई ;
था पुर जगदीश लौटना भी ,
अन्तिम रण की वेला आई ।

'अन्ततः विजय पा लेनी है ;
करना है शिव संकल्प सफल ;
इतिहास तभी तो भारत का
होगा जयमय , जाग्रत , प्रोज्ज्वल ।

★ ★ ★

द्वादश सर्ग

समर - संचालन -३

थे अमर सिंह भी संग , उभय
को करना था प्रत्यावर्त्तन ;
था पुर जगदीश दासता में
अंग्रेजों का ही था शासन ।

तानू सरिता का नौका - पुल
यदि करते पार , तभी बढ़ते ;
गाजीपुर तो आना ही था ;
गंगा - नौका पर तब चढ़ते ।

कर दी ऐसी घेराबन्दी,
अंग्रेज न आगे बढ़ पाये;
वीरवर कुँवर के कुल सैनिक
पुल के इस पार चले आये।

खोजते हुए पलटन पहुँची;
पर उसे पड़ा होना निराश;
वीरवर कुँवर के सैनिक क्या
थे रुके कहीं भी आसपास?

बढ़ चला लुगार्ड लिये पलटन,
तो पथ में मिले कुँवर-सैनिक;
फिर विजयी हुए सुवीर कुँवर;
जय का चलता था क्रम दैनिक।

चौकोर कुँवर ने रचे घोर,
गोरा दल तोड़ नहीं पाया,
आजमगढ़ से छह तोपें लेकर
नघई तक डगलस आया।

वीरवर कुँवर के सैनिक थे
बढ़ते, ले नंगी तलवारें;
वे कई टुकड़ियों में चलते;
रिपु मिलें कहीं भी तो मारें।

नघई में भीषण युद्ध हुआ;
गोरों को तोपों का बल था;
पर कुँवर सिंह के पास मात्र
अपना अद्‌भुत रण-कौशल था।

अन्ततः वहाँ भी रिपु हारे;
चाहे कितने सैनिक मारे;
तोपों से तो मरना ही था;
थे कुँवर सैन्यदल बेचारे।

पर वीर कुँवर बढ़ते आगे;
ये पहुँचे ग्राम सिकन्दरपुर;
घाघरा नदी की पार वहाँ;
लेकर अपना रणशौर्य प्रचुर।

अब गाजीपुर के ग्राम मिले ;
आगे बढ़ते जाना ही था ;
था पुर जगदीश निकटतर अब ;
प्यारा सुलक्ष्य पाना ही था ।

अंग्रेज लगे जो थे पीछे ;
वे ग्राम मनोहरपुर आये;
वीरवर कुँवर काफी आगे
हैं, सुनकर वे थे घबड़ाये ।

अब तो बलिया की बारी थी ;
दीं डुबवा सारी नौकाएँ ;
यदि हाथी पर भी कुँवर मिलें,
तो गोली से मारे ज़ायें ।

बलिया नगरी - तट पर डगलस
औ' कम्बरलीन ससैन्य डटे ;
आदेश हो गया, तट से कोई
सैनिक नहीं कदापि हटे ।

पर बीस किलोमीटर पूरब
था शिवपुर घाट, वहाँ आये ;
वीरवर कुँवर का कौशल था ;
ये नहीं रंच भी घबड़ाये ।

तो रातों रात किसानों ने
डूबी नौकाएँ दीं निकाल ;
नाविक जुट गये वहाँ सत्वर ;
नावें तैयार हुईं सपाल ।

तब कहा वीर ने -'अमर सिंह !
पहले तुम गंगा पार करो ;
सेना भी पार करे, जाकर
नव रण का पथ तैयार करो ।'

तब चले वीरवर नौका से ;
थे पहुँचे मध्य धार में जब ;
गोरे सैनिक की गोली से
थी क्षत दाहिनी कलाई तब ।

पर नहीं वीरवर घबड़ाये;
काटा असि से दाहिना हाथ;
कुहनी से नीचे का समस्त;
बायाँ कर ही अब रहा साथ।

निज काटे कर को सुर - सरिता
को अर्पित कर डाला सभक्ति;
बोले - 'हे माँ! भारत - जन के
हाथों को देना अमित शक्ति।

आश्वस्त हो गया हूँ अब मैं;
भारत को शक्ति मिलेगी ही;
शुचि देशभक्ति - वाटिका यहाँ
सर्वत्र सदैव खिलेगी ही।'

आये गंगा के पार जभी,
तो मिले समुत्साहित जनगण;
सादर - सहर्ष सबने इनका
तब किया हृदय से अभिनन्दन।

त्र त्वरा में चलना था;
ा पल भर समय गँवाना था?
जो जनगण स्वागत करते,
को भी तो अपनाना था।

'सब जन सैनिक बनकर निकलें;
है पुर जगदीश तुरत जाना;
रण करना है अंग्रेजों से;
प्यारा स्वराज वापस लाना।'

ाह्वान वीरवर का सबने,
ुलकित हो, सत्वर अपनाया;
ाय देशभक्त वीरवर कुँवर'
ालते हुए दल बढ़ आया।

जो कुछ सम्भव थे अस्त्र - शस्त्र,
उनको ही लेकर जाना था;
जो भी हो, पर इस महापुरुष
का यज्ञ सशक्त बनाना था।

संकल्प यही था - 'समिधा निज
कुल तन - मन धन की देनी है ;
करना सशक्त है अनुष्ठान ;
निज सत्ता वापस लेनी है ।'

मानते कुँवर की सत्ता को
अपनी सत्ता सर्वत्र सभी ;
इनके आह्वानो से तिलभर
भी विचलित होते नहीं कभी ।

बाजेवाले भी दौड़ पड़े ,
निज दुन्दुभियाँ - डंके लेकर ;
सबने माना कर्त्तव्य , समर में
लगे देह अपनी नश्वर । '

अठ्टारह सौ अठ्टावन की
थी बाइसवीं अप्रैल , तभी
निज पुर जगदीश लौट आये ;
दर्शन पा थे उल्लासित सभी ।

पर कुँवर जी प्रति - युद्धमय थे , चैन से रहते नहीं;
जगदीशपुर यह था विरल ; क्या नगर ऐसे हैं कहीं?
क्या नाम में है तत्त्व कुछ ? है तत्त्व कर्मों में निहित;
ये वीर , यह पुर वीरता के क्षेत्र में है भवविदित।

तो वीरवर पहुँचे तभी से युद्धहित तैयार थे;
कहते , विजय लेनी पड़ेगी युद्ध से , हथियार से।
ये जानते थे , ब्रिटिश जन तो युद्धहित तैयार हैं ;
वे अकस्मात् , लुके - छिपे ही छेड़ देते वार हैं ।

अतएव ये रण प्रबलतम् के हेतु रहते व्यग्र थे ;
ये देशभक्ति - उदग्रता से पूर्ण वीर उदग्र थे ।
था हस्त बायाँ ही बचा , फिर भी नहीं विचलित हुए ;
क्या वाम - दक्षिण - भेद से ये तनिक भी चिन्तित हुए ?

श्वेताश्व थकता ही न था , वह दौड़ता लेकर इन्हें ;
लगता कि भक्त महान् था , वह मानता ईश्वर इन्हें ।
पर मनुज ईश्वर है कहाँ ? रहते सदा उसमें निहित ;
वे सत्य - शिव - सौन्दर्य में रहते निरन्तर सन्निहित ।

चिर सत्य - शिव - सौन्दर्य - रक्षा हेतु ही लड़ते कुँवर ;
स्वातंत्र्य - नय के हेतु ही थे अनवरत करते समर ।
यदि है नहीं स्वाधीनता तो हैं कहाँ सत्यं - शिवम् ?
त्यों देशभक्त न हो मनुज तो सुलभ क्या है सुन्दरम् ?

ये जानते थे, समर तो आकर खड़ा है द्वार पर,
जय - श्रेयवंचित हो भले, योद्धा सदा रण से अमर ।
यों रोक पाता निज निधन क्या मनुज रहकर सदन में ;
ये विकल थे कि स्वतंत्र देखूँ देश चौथे चरण में ।

यह चरण चौथा है भले, संकल्प है बूढ़ा नहीं ;
रहता जहाँ संकल्प है, रहती विजय भी है वहीं ।
संकल्प को क्या आयु की रेखा कभी है बाँधती ?
चिर चेतना की शक्तिमत्ता है विजय निज साधती ।

★ ★ ★

त्रयोदश सर्ग

समर - संचालन -४

करना पड़ गया समर सत्वर ;
आया चतुर्थ रण - संचालन ;
घंटे चौबीस न हुए, तभी
आरा से आ ही पहुँचा रण ।

लीग्राण्ड बड़ी तैयारी से
निज बल अपार लेकर आया ;
तो पुर जगदीश रणस्थल था ;
जयमाल्य वीर ने फिर पाया ।

यह रण निर्णायक होगा ही,
मानते इसे थे वीर कुँवर ।
होगा ही रण - वत्सर पूरा,
चाहे न रहे काया नश्वर ।

पास ही छिपी गोरी सेना,
तोपें अनेक ले जंगल में;
गोले बरसाने लगी, लगे
भारतवासी मरने पल में।

करते मुकाबला तोपों का
निज देशभक्ति से वीर कुँवर;
इनका अदम्य साहस अपनी
सेना में देता यौवन भर।

'मारो, अंग्रेजों को मारो,'
उद्घोष गगनभेदी था यह;
यह शौर्य-तेज, संकल्प अजय
करता था बलाघात दुस्सह।

थीं तोपें नहीं, कुँवर तो थे;
था भारतीय बल प्रलयंकर;
गोलियों और तलवारों की
थी अद्भुत-अनुपम शक्ति प्रखर।

आक्रमण अकारण था, परन्तु
यह प्रत्याक्रमण सकारण था;
देवासुर-रण-कल्पना सदृश
पावन यह भारत का रण था।

थी उधर तड़ातड़ तोपों की;
तो इधर गोलियाँ थीं दन-दन;
छप-छप-छप-छप असिताण्डव था;
दौड़ते अश्व सरपट सन-सन।

लगता कि युद्ध-भैरवी नृत्य
करती थी पुर के कण-कण में;
संकल्प सुदृढ़ था, गोरों को
देंगे ही मार भगा क्षण में।

लगता कि समर-दुन्दुभियों में
भी था अजेय संकल्प भरा;
डंकों की तुमुल डमाडम-डम
लाती थी गति में विजय-त्वरा।

थी 'ठाँय - ठाँय' ध्वनि अति व्यापक ,
था धाँय - धाँय का तुमुल रोर ;
पर वीर कुँवर का महातेज
कुहराम मचाता था अथोर ।

रण ही रण था क्षितिजों तक ज्यों ;
सर्वत्र समर - ध्वनि थी भैरव ;
था मात्र श्रव्य ही हो पाता ;
क्या दृश्य देखना था सम्भव ?

असि लिये वाम कर में ही तो
वीरवर वार कर पाते थे ;
था एक जानु भी अत्याहत ;
फिर भी ये प्रलय मचाते थे ।

अंग्रेज समझने लगे , प्रलय
ऐसे वीरों को ही कहते ;
जो नहीं सौध - विश्रामी हैं ;
दिनरात समर में ही रहते ।

भारत के नरशार्दूलों के
सम्मुख टिक पाते क्या गोरे ?
थे देशभक्तिमय भारत - जन ;
गोरे थे सैनिक ही कोरे ।

ज्वालामय था सम्पूर्ण जिला ;
जो शाहाबाद कहाता था ;
ऐसा था मिट्टी का प्रभाव ,
नागरिक शूर बन जाता था ।

हाँ , तभी नागरिक भी, सुवीर
बन, तुमुल युद्ध कर पाते थे ;
आहत , क्षत - विक्षत होकर भी
अविरत रण करते जाते थे ।

वीरवर कुँवर उत्प्रेरक थे;
रणवीर अमर भी थे नेता ;
थे देशभक्त कुल आशान्वित ;
'भारत होगा ही रण - जेता ।'

था जाति - पाँति का भाव नहीं ;
था सम्प्रदाय का नहीं भाव ;
राष्ट्रीय एकता के रक्षक
वीरवर कुँवर का था प्रभाव।

थे अमर सिंह भी ऐसे ही;
निज अग्रज के पक्के अनुचर ;
कह सकते हैं अनुयायी भी ;
आदेश मानते थे सत्वर ।

तो युद्ध सफल होना ही था ;
पड़ना ही था प्रभाव व्यापक ;
गोरे थे भयकम्पित अतीव ,
लगता कि मरण देता दस्तक ।

भारत - दल की भैरव गति से
लगता था ज्यों भूकम्प हुआ ;
गोरों की सेना में लगता ,
कोलाहलमय हड़कम्प हुआ ।

भागने लगे बनकर श्रृगाल ;
शार्दूल आ गये हों जैसे ;
थे नरशार्दूल कुँवर - सैनिक ;
गोरे श्रृगाल टिकते कैसे ?

'अब इन्हें भगाकर ही दम लो , '
रणवीर कुँवर बोलते रहे ;
थे लाये रण का झंझानिल ;
शोणित - नद रिपु के अमित बहे ।

प्रत्याक्रामक से आक्रामक
बन , अब लड़ते भारत - सैनिक ;
अंग्रेज श्रृगालों का तब तो
भागना हो गया स्वाभाविक ।

बढ़ते भारत के सिंह और
मृग - हरिण सदृश भागते ब्रिटिश ;
वे भाग झुण्ड के झुण्ड चले ;
हो गई चूर ज्यों जंग - हविस ।

लीग्राण्ड हो गया भूलुण्ठित ;
उन्मत्त श्वान - सा निहत हुआ ;
हत हुए अमित गोरे सैनिक ;
सारा दल रण से विरत हुआ ।

कर गये पलायन कुल गोरे;
तो अब किससे रण करना था ?
'आक्रमण सहेंगे कभी नहीं,'
अब केवल यह प्रण करना था ।

यह तेइसंवीं अप्रैल विजय
लाकर कहलाई विजय - दिवस ;
बज उठे विजय के तुमुल तूर्य ;
पाया सबने नवजीवन - रस ।

'जय कुँवर वीर, जय कुँवर सिंह'
का गुंजित जन - जयघोष हुआ ;
यों एक दिवस के रण से ही
मिल गई विजय, सन्तोष हुआ ।

सन्तोष ही नहीं, यह तो था
लाया सब में उल्लास चरम ;
कण-कण में था व्यापक उत्सव ;
जन - जन में था उत्साह परम।

अतिशय सुदीर्घ निकले जुलूस ;
शोभा - यात्राएँ थीं अविरत ;
वीरवर कुँवर के रण से था
बन गया विजेता प्रिय भारत ।

फिर कुँवर सिंह अभिषिक्त हुए,
बनकर शासन के सूत्रधार ;
ये थे जनसेवक, जन - नायक ;
आह्लाद मिला जन को अपार ।

पर तीन दिवस ही तो जीवित
रह सके विजेत वीर कुँवर ;
क्षत - विक्षत जानु - भुजा लेकर
कैसे जीवित रह सकता नर ?

इस देशभक्त, अनुपम जेता
को काल करेगा चिर प्रणाम;
गायेगा ही सम्पूर्ण विश्व
इस महावीर का यश ललाम।

सम्पूर्ण जगत् इस विरल वीर
योद्धा से होगा उत्प्रेरित;
केवल उत्प्रेरित नहीं, देश
भारत होगा चिर संजीवित।

छब्बीस रही अप्रैल घोर,
जिसने जीवन का अन्त किया;
हो गया विनत दिव था सभक्ति;
उसने इनको अमरत्व दिया।

मिट्टी ही मिट्टी ने पाई;
है सुयश काल - नभ में व्यापक;
इस महामनुज के लिए कभी
क्या सम्भव है प्रशस्ति सम्यक्?

चतुर्दश सर्ग

उपसंहार

वीरवर श्री अमर जी को भी समर्पित है नमन;
विषमतम स्थिति में नहीं रोका उन्होंने महारण।
चार दिन वे थे चलाते ही रहे अविरत समर;
ब्रिटिश सेना से रहे लड़ते हुए आठों प्रहर।

सुन लिया अंग्रेज सत्ता ने, नहीं अब हैं कुँवर;
नमन श्रद्धा से किया, फिर चले रण के पंथ पर।
विकल थे, जगदीशपुर को प्राप्त करने के लिए;
विजय के इतिहास में नव पृष्ठ भरने के लिए।

चल पड़े प्रतिरोध - पथ पर अमर सिंह महाबली
थे चले अंग्रेज शासक, जो रहे अतिशय छली।
चाहते थे यह कि हो जगदीशपुर फिर से विजित
कर सकें शोषण युगों तक, प्राप्त हो वैभव अमित।

पर अमर ने मार्ग में भीषण किया प्रत्याक्रमण
उखड़ते क्रमशः रहे अंग्रेज - शासन के चरण।
पूर्ण अग्रज - भक्त थे वे, देशभक्त महान् थे
चन्दमा बन ज्योति देते, जब नहीं दिनमान थे।

चाहिए आलोक देना, शशि रहें या रहें रवि
जो विभा दे अनवरत, होती वही अप्रतिम छवि
शौर्य के सौन्दर्य से अनुपम रहा जीवन सतत
समर अन्तिम साँस तक चलता रहे, था सुदृढ़ व्रत

तीसवीं अप्रैल: तक अविरत रहे संघर्ष - रत
थे प्रबल प्रतिरोध करते, युद्धमय था पूर्ण पथ
बढ़ गये अंग्रेज कुछ तो पुनः वे पीछे हटे
प्रलय - सेना संग ले, रहते अमर पथ पर डटे

डटे गये प्रत्येक कण में वीर अमर महारथी;
किन्तु तुलना में सुलभ उनको कहाँ सम शक्ति थी ?
लूटते थे ब्रिटिश भारत को महाशोषक बने;
चाहते थे, यों सदा दीपावली उनकी मने।

पर अमर भी कुँवर वत् थे डटे रण के मार्ग पर;
रह संमर्पणपूर्ण करते युद्ध वे अतिशय प्रखर।
संग उनके अखिल सैनिक भी रहे उत्साहमय;
युद्ध - रुधिर - प्रपात रहता था सदैव प्रवाहमय।

एक भी कण था नहीं प्रतिरोध से वंचित कभी;
ब्रिटिश गति अवरुद्ध करने को डटे रहते सभी।
लग रहा था पुनः आया युद्ध का भूचाल था;
था मचा नरमेध - ताण्डव, नाचता ज्यों काल था।

अमर की तलवार से, क्या ज्ञात कितने हत हुए;
ब्रिटिश द्वारा भी अमर - सैनिक तथैव निहत हुए।
पर अमर का रण - मनोबल पूर्णतः अविजेय था;
मुक्त ही जगदीशपुर बचता रहे, यह ध्येय था।

सर्वदा स्वातंत्र्य ही तो परम पावन ध्येय है ;
प्राण या धन क्या कभी इस हेतु रंच अदेय है ?
देशभक्ति महीयसी है ; क्या न पालन चाहिए ?
चिर समर्पित क्या नहीं इस हेतु जीवन चाहिए ?

पर कहाँ सम्भव कि कणिका रोक दे नगराज को ?
सूक्ष्मतम पक्षी भला क्या रोक सकता बाज को ?
श्रेय है यह उच्चतम, खंजन लड़े यदि बाज से ;
यदि रहें अविजेय कुछ दिन मनुज दस्यु - समाज से ।

दस्यु ही तो थे ब्रिटिश, वे क्रूर घोर, नृशंस थे ;
थे भले गोरे, करैतों के सदृश पर दंश थे ।
कुटिलता से पूर्ण चिर उनके अखिल आघात थे ;
अमर तो करते सदा प्रत्यक्ष उल्कापात थे ।

तीसवीं अप्रैल को जगदीशपुर आकुल हुआ ;
कुँवर के गढ़ में घुसे अंग्रेज, पुर व्याकुल हुआ ।
अमर जी का क्या हुआ ? निश्चित नहीं इसका पता ;
पर नहीं देखा पराभव, वृत्त यह देता बता ।

मानी न पराजय कभी जिन्होंने उन वीरों को है प्रणाम ;
अक्षम इतिहास नहीं लिख पाया है उन सबके पुण्य नाम ?
अज्ञात नाम हैं तो क्या है? अर्पित हैं उनको अखिल नमन;
अभिवंद्य सदा हैं देशभक्त, अर्पित उनको कुल अभिवादन।

हैं देशभक्त चिर वन्दनीय, जो रहे जाति या सम्प्रदाय ;
क्या देशभक्ति के बिना राष्ट्र के जीवन का कोई उपाय ?
हों किसी देश के तो क्या है ? कुल देशभक्त हैं धन्य - धन्य ;
कवि अर्पित करता नमन उन्हें, बन सके भक्त उनका अनन्य।

वे राष्ट्र - चन्द्रमा के चकोर हैं सदा अग्निपंथी होते ;
करते ज्वाला का पान और ज्वाला की शय्या पर सोते ।
उनकी स्मृति सतत नमस्या है, यह कृति इस हेतु हुई अभिहित ;
उनका अवदान उन्हीं को है करता कवि श्रद्धा से अर्पित !

हैं वीर स्वयं अग्निस्फुलिंग, यदि होते हैं विप्लवी वीर ;
जनगण को जीवन देने को रहते हों यदि वे चिर अधीर ।
हा पराधीनता कहीं नहीं, हो नहीं कदापि राष्ट्र - शोषण ;
श्रम - बुद्धि सदैव अशोषित हों, अक्षुण्ण रहे श्रम हित यौवन ।

अलिखित हों उनके नाम भले ; रहते हैं उनके कर्म अमर ;
होते सुकर्म देदीप्यमान , हों भले नहीं स्मृति के प्रस्तर ।
हों कुँवर सिंह या अमर सिंह , अथवा कोई हो अन्य नाम ;
मंगल पाण्डेय कि पीर अली , अर्पित हैं वीरों को प्रणाम ।

लक्ष्मीबाई , तात्याटोपे अथवा हों फड़नवीस नाना ;
हों हजरत महल कि हों जीनत बेगम , था शौर्यभरा बाना ।
थे देशभक्त अहमद, त्यों थे सम्राट् बहादुरशाह जफर;
क्या नाम गिनाना है सम्भव? नत है शिर सबके चरणों पर।

जो देशभक्त थे , या भविष्य में भी हों जो होने बाले ,
उनकी पावन स्मृति में सदैव कवि श्रद्धा के दीपक बाले ।
स्मृति - तर्पण क्रान्ति - सुवीरों का , वीरों का अत्यावश्यक है ;
यों तो अधिकाधिक श्रद्धा भी होती कदापि क्या सम्यक है ?

सेनापति थे अथवा सैनिक , दोनों में कोई भेद कहाँ ?
नर थे कि नारियाँ थीं , पावन रण में तो सब थे एक यहाँ।
कवि नमन सभी को करता , है उनका कृतज्ञ भारत सारा;
सर्वदा प्रवाहित रहे यहाँ शुचि देशभक्ति - रण की धारा।

वीरत्व सदा अक्षुण्ण रहे , अविरत यह बढ़ता ही जाये ;
जन - जन भारत का देशभक्त हो , सेवार्पण करता जाये।
उन्नीस - सदी के सत्तावन - अट्ठावन को अर्पित प्रणाम ;
कुल स्वतंत्रता-रण को प्रणाम , हो भले नहीं वह पूर्णकाम।

यों पूर्णकाम होता ही है चिर स्वतंत्रता का पुण्य समर ;
उत्प्रेरक होता ही है वह , जन देशभक्ति से जाते भर ।
अन्यथा प्रेरणा क्या सम्भव ? जन स्वार्थभाव अपनाते हैं;
जागते नहीं प्रहरी बन कर ; सीमा पर भी सो जाते हैं।

अनवरत जागरण आवश्यक है मुक्ति सदैव बचाने को ;
शूरत्व अपेक्षित रहता है निज स्वत्व यथोचित पाने को ।
थी उन्नीसवीं सदी लाई पावन सत्तावन - अट्ठावन ;
दोनों वत्सर थे धन्य , प्राप्त कर वह भारत-स्वतंत्रता-रण।

शुचि संगर की वह ज्वाला क्या है बिल्कुल बुझ जाने वाली?
सुलगी है और सुलगती ही जायेगी ले अपनी लाली।
सम्भव हो सका 'अग्निपंथी' का लेखन उस ज्वाला से ही;
जैसे तुंगत्व - प्रेरणा भी मिलती हिमगिरि - माला से ही।

अम्बुधि - तरंगमाला जैसे सरिताओं में भरती उमंग,
जैसे नभ में बजने लगता घनमालाओं से जलतरंग,
वैसे उस रण का पुण्य स्मरण देता सदैव है उत्प्रेरण;
करने को स्वतंत्रता-रक्षण, रण से पाने के लिए स्फुरण ।

नर को चाहिए अग्निपंथी होना ही ज्योति जगाने को;
करने को रक्षित मनुज - मूल्य, नय राष्ट्र हेतु चिर पाने को।
जन - जन को समुचित न्याय मिले, ऐसा हो न्यायपथिक शासन;
इसलिए न्यायरण-वीरों को अर्पित हैं कवि के अमित नमन।

होता अन्तिम कर्त्तव्य कहाँ? क्या वह पूरा हो पाता है?
जीवन भर करते जाने पर भी बहुत शेष रह जाता है।
करता है मानव श्राद्ध, किन्तु श्रद्धा अपूर्ण रह जाती है;
जितनी भी श्रद्धांजलि अर्पित हो, पूर्ण नहीं हो पाती है।

इस रण से पहले गोरों से थे लड़े वीर टीपू महान्;
उनको भी नमन समर्पित हैं, दे गये देश को प्राणदान ।

******
****
**
*

[वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय के स्नातक पाठ्यक्रम में सम्मिलित]

पंचदश सर्ग (परिशिष्ट)

धर्मन - अजेयता

नारी चिर प्रकृति – अभिहिता है;
रहती है शाश्वत प्राणमयी;
चिर स्वाभिमानिनी भी है वह;
रहती सदैव कल्याणमयी।

जिस भाँति प्रकृति रहती स्वतंत्र
उस भाँति चाहती स्वतंत्रता;
चाहती नहीं बन्धन कदापि;
उसको असह्य है पखशता।

थे ब्रिटिश चाहते, भारत के
जन–जन, कण–कण चिर दास रहें;
भारत – कलिकाओं – सुमनों के
मन कुण्ठित, रूग्ण, उदास रहें।

उल्लास न उनमें हो कदापि;
उनके अधरों पर हास न हों;
मधुवन में ग्रीष्म – शिशिर ही हों;
हेमन्त, शरत्, मधुमास न हों।

थे घोर आततायी गोरे;
धर्मन चाहतीं कि वे भागें;
भारत – नभ में जो अमा – तिमिर
है, वह भागे, भारत जागे।

जब सुना उन्होंने वीर कुँवर
गोरों के हैं अरि महाप्रबल,
तब उनके निकट पहुँच धर्मन
ने कहा कि 'लें मेरा भी बल।

यह बल पवित्र नारी का है;
इसमें है शक्ति भवानी की;
देखें अपने रण में सुवीर !
दृढ़ देशभक्ति मस्तानी की।

मुझको भी अपने शुचि रण में
रणचण्डीवत् कुछ करने दें;
पी सकूँ रक्त मैं गोरों का;
खप्पर शोणित से भरने दें।

हैं आप नारियों के रक्षक
तो मेरे भी रक्षक होंगे;
नारी – अस्मिता बचायेंगे;
पावनता – संवर्द्धक होंगे।

घुट – घुट कर साँसें लेने से,
जीने से मरना श्रेयस्कर
है; मरूँ देश के रण में तो
क्या नहीं कहेगा लोक अमर?

यों नहीं अमरता भी इच्छित;
है इच्छित, हो कर्त्तव्य – समर;
मैं नहीं रहूँ रण से बाहर,
दिखला दूँ अपनी शक्ति प्रखर।

संगीत – साधिका हूँ तो मैं
निज शौर्य – गीत भी गाऊँगी;
मैं भारत – रण के दीवानों
का जोश अदम्य बढ़ाऊँगी।

घन अत्याचार – अनय गोरों
का कर सकती मैं नहीं सहन;
मैं बनूँ सेविका भारत की,
यह अटल – अचल है मेरा प्रण।

यदि आप वज्र प्रलयंकर हों
तो मैं प्रचण्ड दामिनी बनूँ,
चम – चम चमकूँ, शम्पा – निपात
मैं करूँ; नहीं कामिनी बनूँ।

मैं अशनि – प्रहार करूँगी तो
गोरों को धूल चटा दूँगी;
मैं वीरांगना बनूँगी तो
कुछ तो दासत्व हटा दूँगी।

भारत – नारी क्या पारिजात–
कलिकावत् ही चिर है रहती?
है वज्रादपि कठोर भी यह;
जड़ अत्याचार नहीं सहती।

यह आगे भी जा सकती है
भारत के रचनात्मक रण में;
दे सकती तन – मन – धन – जीवन;
दौर्बल्य नहीं लाती मन में।

अंग्रेज सताते थे मुझको,
यह समझ कि नारी अबला हूँ;
चाहती दिखा देना उनको,
भारत – नारी हूँ; प्रबला हूँ।

वीरवर ! आप देखेंगे ही
मैं सहयोगिनी बनूँगी जब;
स्वीकार करें आग्रह मेरा;
मैं नहीं रहूँगी बैठी अब।

मेरा सौभाग्य अमित होगा
जब संग आपके जाऊँगी;
लोरी गाऊँगी नहीं, जागरण–
भैरव – राग सुनाऊँगी।

अरियों की ग्रीवा पर मैं असि
जयिनी, अतिघातक मारूँगी;
चाहे मैं मर – मिट जाऊँगी,
पर कभी न हिम्मत हारूँगी।

इस रण के कुल भारत – सैनिक
होंगे मेरे प्यारे भाई;
मैं उनको राखी बाँधूगी;
वे लेंगे जय की अँगड़ाई।'

वीरवर कुँवर ने कहा– 'धन्य हो!
तुम्हें संग ले लूँगा ही;
हे वीरांगने! तुम्हारी अस्मत
को रक्षण मैं दूँगा ही।

विधुवदनी भारत – नारी के
नयनों में रहता महाताप;
चारुता और शीतलता में
भी रखती रणचण्डी – प्रताप।'

दोनों ने मिल कर स्वतंत्रता
के रण को दी जय की माला;
देखी गोरों ने भारत – ललना
की भीषण जय – रण – ज्वाला।

हिन्दू – मुसलिम हो गये एक
तो बना अनलकण विस्फोटक;
हों भारतीय जन एक जहाँ,
कुल जग – युग होंगे नतमस्तक।

उस भारत – नारी को प्रणाम
जो अस्मत सदा बचाती है;
भारत पर वार नहीं सहती;
रिपुदल को मार भगाती है।

धर्मन ऐसी ही नारी थीं;
अर्पित उनको शाश्वत प्रणाम;
उनका भी नाम अमर – जैसे
वीरवर कुँवर का हुआ नाम।

रणवीर कुँवर की जय में था
उनका भी तो सहयोग प्रखर;
वे भी तो थीं दृढ़ देशभक्त;
देती थीं राष्ट्र – एकता बर।

थीं सम्प्रदाय में बद्ध नहीं;
रखती थीं अनुपम देशभक्ति;
सर्वदा सफ़ल होती ही है
दृढ़ देशभक्ति की विजय – शक्ति।

{ ❁ }